Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी
लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी, हीराबाग, बम्बई नं. ४.

दशवाँ भाग। | श्रावण श्रीवीर नि० संवत् २४४० | १० वाँ अंक।

विषयसूची।

		पृष्ठ
१	गतगौरवकी स्मृति (कविता)	५७७
२	महाकवि वल्लुवर और उनका कुरल काव्य ...	५७९
३	जीवनका विचित्र परिवर्तन (गल्प) ...	५८३
४	चरित्रगठन और मनोबल	५९६
५	डाक्टर जैकोबीका व्याख्यान	६०७
६	सांख्यदर्शन	६१९
७	विविध प्रसंग	६२८

केशर—काश्मीरकी केशर जगत्प्रसिद्ध है। नई दर १) तोला।

सूतकी मालायें—सूतकी माला जाप देनेके लिए सबसे अच्छी समझी जाती हैं। दर एक रुपयेमें दश माला।

दीपमालिका उत्सवके कार्ड और नोटपेपर शीघ्र मंगाईये। दर चार आना सैकड़ा।

पत्रव्यवहार करनेका पता—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ted by Ganpat Narayan Kulkarni at his Karnatak Press,

नई छपी हुई पुस्तकें।

श्रीपालचरित—पहली बार जो श्रीपालचरित छपा था, वह चौपाईबंध था–उसे सब लोग सहज ही न समझ सकते थे, इस कारण अबकी बार मास्टर दीपचन्दजीकी बनाई सरल बोलचालकी भाषामें छपाया गया है। पक्की जिल्द बँधी है। मूल्य १=)

जम्बूस्वामीचरित—यह भी बोलचालकी भाषामें छपा है। मूल्य ।)

जैनार्णव—इसमें १०० पुस्तकें हैं। मू० १)

हिन्दी भक्तामर—भक्तामर स्तोत्रका खड़ी बोलीमें पं. गिरिधरशर्माकृत अनुवाद। मू० सवा आना।

जैनगीतावली—बुन्देलखण्डकी स्त्रियोंके लिए ब्याह शादियोंमें गानेलायक गीतोंका संग्रह। मू० ।=)

छहढाला अर्थसहित—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी कृत। अबकी बार निर्णयसागर प्रेसमें खूबसूरतीके साथ छपा है। मूल्य ढाई आना।

मितव्ययिता—(किफायतशारी)—एक अंग्रेजी ग्रंथके आधारसे बाबू दयाचन्दजी जैनी बी. ए. ने लिखी है। प्रत्येक घरके स्त्री पुरुषों बालक बालिओंको इसे पढ़ना चाहिए। फिजूलखर्ची और बुरी आदतें छुड़ानेके लिए यह गुरुका काम देगी। मूल्य चौदह आने।

विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य—एक नामी विद्वानका लिखा हुआ निबन्ध। प्रत्येक विद्यार्थीको पढना चाहिए। मू० एक आना।

सच्ची मनोहर कहानियां—भारतवर्षके प्रसिद्ध प्रसिद्ध वीर और वीरांगनाओंकी हृदयको फड़का देनेवाली ऐतिहासिक कहानियां। सरल, सबके पढने योग्य, जैनसमाजमें प्रचार करनेके लिए खास तौरसे मँगाई गई हैं। मू० ॥)

सीताचरित—बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए. ने जैन ग्रन्थोंके आधारसे सरल हिन्दीमें बड़ी योग्यतासे लिखा है। मूल्य तीन आने।

दिगम्बर जैन डिरैक्टरी—सारे हिंदुस्तानमें कहाँ कहाँ, कितने, किस जातिके जैनी बसते हैं, क्या धंदा करते हैं, मंदिर कितने हैं, मुखिया कौन कौन हैं, तीर्थ कहाँ कहाँ हैं, उनका प्राचीन इतिहास आदि सैकड़ों जानने लायक बातोंका संग्रह है। मूल्य आठ रुपया। डांक खर्च एक रुपया।

मिलनेका पता:—

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पो. गिरगांव–बम्बई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१०वाँ भाग] श्रावण, श्री वी०नि०सं० २४४०। [१० वाँ अं०

गत-गौरवकी स्मृति।

(१)

भ्रातृगण, अपनी अवस्थाकी कथा सुन लीजिए,
प्रियवरो, इस ओर भी कुछ ध्यान अपना दीजिए।
शोकसे हो व्यग्र यद्यपि कुछ कहा जाता नहीं,
किन्तु कहनेके बिना भी तो रहा जाता नहीं॥

(२)

थी हमारी क्या दशा, अब हीनता कैसी हुई,
न्यूनता, संकीर्णता, धनक्षीणता कैसी हुई।
एक दिन हमसे सुशोभित थी अहा! सारी मही,
शोक! अब गिनती हमारी उँगलियों पर हो रही॥

(३)

पूर्वके सब तेज, वैभव उठ गये हा सर्वथा,
रह गई अब सिर्फ़ ग्रंथोंमें लिखी उनकी कथा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वे हमारे कर्म और चरित्र किसने हर लिये?
हा! हमारे पूर्वजोंके साथ ही वे चल दिये ॥

(४)

क्या हुआ वह ज्ञान अनुपम? मान क्या अब है कहीं?
हा! जगत कहता हमें है आजकल क्या क्या नहीं।
हाय! निज अपमानका हमको न कुछ भी ध्यान है,
क्या रहा है शेष जिस पर अब हमें अभिमान है?

(५)

व्याकरणमें, न्यायमें, विज्ञानमें, साहित्यमें,
धर्म-दर्शनमें, चिकित्सामें, कला-कौशल्यमें।
ज्ञान वह है कौनसा जिसमें न हम सुप्रवीण थे?
इस तरह तो नहिं कभी पुरुषार्थ औ बलहीन थे?

(६)

बंधुजन, जिनसेनसे पंडित प्रवर हम ही तो थे,
वादिगुरु अकलंकसे हे मित्रवर, हम ही तो थे।
लेश भी निज पूर्वजोंका अब नहीं हममें अहो!
अब कहीं मिलती सदुपमा आपमें उनकी कहो?

(७)

हेतु था इतिहास जो निज अभ्युदयका, लुप्त है,
सात तालोंमें पड़ा साहित्य भी तो गुप्त है।
है अतुल जातीय-दुर्बलता हमारी लोकमें,
हाय! सामाजिक हमारा बल गया किस थोकमें?

(८)

छोड़कर निद्रा उठें, कुछ काम मिलकरके करें,
ज्ञान करके प्राप्त जल्दी हीनता अपनी हरें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जातिका, साहित्यका उत्थान कर जीवित बनें
कर्मवीरो! मृत्युके भी बाद चिरजीवित बनें ॥

–'संशोधक।'

महाकवि वल्लुवर और उनका कुरल-काव्य।

तामिल भाषाके साहित्यमें प्राचीन जैन विद्वान् अपनी कीर्तिको सदाके लिए अमर कर गये हैं। तामिल भाषाका साहित्य बहुत ही प्राचीन है। विक्रम संवतके प्रारंभकाल तकके तो कई तामिल काव्य इस समय भी प्राप्त हैं। इन काव्योंमें संस्कृतका स्पर्शतक नहीं है। ये बिलकुल स्वतन्त्र और स्वाधीन प्रतिभाके बल पर लिखे गये हैं। इनमेंसे अनेक काव्य मद्रास यूनीवर्सिटीकी आर्ट्स परीक्षाओंके पाठ्यग्रन्थ हैं। तामिलदेशवासियोंको अपने इस प्राचीन साहित्यका बहुत बड़ा अभिमान है।

जैनहितैषीके गत दूसरे अंकमें श्रीयुत टी. पी. कुप्पूस्वामी शास्त्री एम. ए. का 'प्राची नभारतमें जैनोन्नतिका उच्च आदर्श' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हो चुका है। इस लेखमें 'तिरुक्कुरल' नामक काव्यके विषयमें कहा गया है कि "यह तामिल भाषाका सर्वमान्य महाकाव्य है। इसको बड़े बड़े लेखकोंने–जो कि भिन्न भिन्न धर्मोंके अनुयायी हैं–सहर्ष उद्धृत किया है और इसका अनुवाद यूरोपकी चारसे अधिक भाषाओंमें हो चुका है। इसके कर्ताका यश इतना अधिक है कि कदाचित् हिन्दू उन्हें अपनेमेंसे ही बतावें किन्तु फिर भी यह निर्विवाद सिद्ध किया जा सकता है कि वे जैन थे। इत्यादि।" इस ग्रन्थके और इसके कर्ता महाकवि श्रीवल्लुवरके विषयमें हमारे नवीन सहयोगी 'पाटलिपुत्र' ने अपने भाद्रपद शुक्ला ९ के अंकमें एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशेष प्रकाश डालनेवाला लेख प्रगट किया है। हितैषीके पाठकोंको हम यहाँपर उसीका सारांश भेट करते हैं:—

तामिल भाषाके प्राचीन काव्योंमें 'कुरल' का सबसे अधिक आदर है। इसे 'तिरुक्कुरल' और 'मुप्पाल' नामसे भी पुकारते हैं। इसके कर्ताका नाम 'वल्लुवर' था। वल्लुवर ब्राह्मण नहीं थे; वे परया अथवा अन्त्यज (शूद्र) थे। परन्तु उनका नाम ब्राह्मण नामकी भाँति 'तिरुवल्लुवर' अर्थात् 'श्रीवल्लुवर' पुकारा जाता है। वे मद्रासके मयलापुरके रहनेवाले थे। विक्रम संवत्से कोई १०० वर्ष पीछे, वे पाण्ड्यराजके पास मदुरा (मथुरा) राजधानीमें पहुँचे। उस समय द्रविड़ देशमें कविताकी परीक्षा कविसंघ या कविसमूह द्वारा की जाती थी। पाण्ड्यराजके दरबारमें भी एक कविसंघ था। इस कविसंघके सभासदोंमें उरयपुर[1] (चोलराज्यान्तर्गत), कावेरीपट्टन, चेल्लूर आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानोंके कवि सम्मिलित थे। इस कविसंघके कवियोंकी नामावली भी मिलती है।

पाण्डयराज 'उग्र-पेरुवलुथि' और कविसमूहके समक्ष कवि वल्लुवरने अपनी रचना पेश की। संस्कृत, प्राकृत, या तामिलमें ऐसा कोई ग्रन्थ उस समय तक न था। संघने कुरल काव्यको आद्योपान्त श्रवण किया। सुनकर उसकी एकमुखसे प्रशंसा की और प्रत्येक कविने अपनी अपनी सम्मति एक एक पद्यके द्वारा पाण्डयराजके सामने प्रकाशित की। इरयनार नामक कविने कहा—"वल्लुवरकी कृति अमर होगी और अनेक पीढ़ियों तक ज्ञानदान करेगी।" कलुदा नामक कवि बोला--"छह मत हैं, परन्तु वे छहों मत वल्लुवरके मुप्पाल

१ कालिदासने अपने रघुवंश काव्यमें इसका 'उरगपुर' के नामसे उल्लेख किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काव्यको अपनानेमें एक है।" एक और कवि कह उठा—"ब्राह्मण वेदोंको इसलिए कण्ठाग्र रखते हैं कि लिखनेसे उनका मोल कम हो जायगा। किन्तु मुप्पाल तालपत्र पर लिखे जाने पर और सबके द्वारा पढ़े जाने पर भी मानमें कम न होगा।"

संघमें एक 'चथन' नामका कवि भी था। यह अपनी लोहलेखनी मत्थेकी ओर उठाये हुए बैठा रहता था। ज्यों ही कोई बुरा और अशुद्ध पद्य पढ़ा जाता था कि वह कलमसे अपना मत्था ठोंकता था। परन्तु जब कुरल काव्य पढ़ा गया, तब उसने एक बार भी अपनी लोह-लेखनी मत्थेसे न लगाई! इसे देख एक वैद्य सभ्यने कहा कि "मुप्पाल काव्यने हमारे मित्र चथन कविकी शिरःपीड़ा अच्छी कर दी!"

जो विद्वान् तामिल भाषा जानते हैं वे कहते हैं कि कुरल काव्योंका राजा है। उसमें छन्द, भाषा और प्रसादगुणसम्बन्धी कोई भी दोष नाम मात्रको नहीं है। इसीलिए उस सभामें पाण्ड्यनरेश उग्रराजने कहा था कि "स्वयं ब्रह्माने विल्लुवरका रूप धारण करके मुप्पाल काव्यकी रचना की है।"

कुरलकाव्यके तीन विभाग हैं—धर्म, अर्थ और काम। काव्यकी सारी उक्तियाँ चुटीले दोहोंमें हैं। (टी. पी. कुप्पूस्वामी शास्त्री, एम. ए. के लेखानुसार इसमें १३३ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्यायमें बीस बीस दोहे हैं। सब मिलाकर २६६० छन्द हैं।) कवि वल्लुवरका धर्म जैन था; परन्तु उसकी उक्तियाँ कहे देती हैं कि उसके धार्मिक विचार बहुत उदार थे। उसकी उक्तियोंका परिचय लीजिए:—

१—"दान लेना बुरा है, चाहे उससे दीनता भले ही दूर हो जाय।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२–" दानकार्य अच्छा है, चाहे उससे स्वर्ग न भी मिले।"

३–" बाँसुरी मीठी है, वीणा मधुर है, यह उक्ति उनकी है जिन्होंने अपने बच्चोंकी तोतली बोली नहीं सुनी।"

४–" जो बेथके मेहनत करते हैं वे अदृष्टको भी जीत लेते हैं।"

५–" एक जीवकी हत्या बचाना, हजार बार घी जलाने (यज्ञ) से उत्तम है।"

६–" सबेरे बुराई करो, शामको उसका फल चखो।"

७–" विद्या किस कामकी, यदि विद्वान् सर्वज्ञकी पूजा न करें।"

कुरलकाव्यका तामिल-भूमिमें इतना आदर है कि उसे कोई बिना स्नान किये नहीं छूता। उसके पाठको ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर सभी गीताके पाठके समान पुनीत मानते हैं। इस काव्यकी पूजा तक की जाती है। तामिलोंको कुरल काव्यका घमण्ड है; कुरलका नाम लीजिए कि वे उसका गुणगान करने लगते हैं। कुरलका अँगरेजी अनुवाद डाक्टर पोपने आक्सफर्ड यूनीवर्सिटी प्रेसमें छपाया है।

लेखके अन्तमें पाटलिपुत्रके सुयोग्य सम्पादक महाशयने लिखा है- " खेद है कि अरबके कुरानका हिन्दी भाषान्तर तो हो और दक्षिणापथके कुरलके नामसे भी हिन्दीभाषी अपरिचित रहें।" इस उक्तिका हमारे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इसलिए हमने इस महाकाव्यके हिन्दी अनुवादको प्रकाशित करनेका दृढ निश्चय किया है। देखें, हमारी यह इच्छा कब पूर्ण होती है और हिन्दीभाषाभाषी सज्जनोंके हाथोंमें हम इस दो हजार वर्षके पुराने जैन कविकी कृतिको रखनेमें कब समर्थ होते हैं। यदि कोई धर्मात्मा सज्जन इस काव्यके प्रकाशित करनेमें कुछ आर्थिक सहायता देंगे, तो वह सहर्ष स्वीकार की जायगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवनका विचित्र परिवर्तन।

(१)

"तू मुझे जानता है? अरे नट, मैं कितना बड़ा आदमी हूँ यह तू समझता है?"

"हाँ, मैं तुझे बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। डरपोंक, दुर्बल, कला-रहित और लक्ष्मीका दास, तू एक बनियेका बेटा है। मेरी बेटी अनेक कलाओंमें कुशल है, शरीर और मनको बुद्धिके शासनमें नचानेकी विलक्षण शक्ति रखती है और जगतके मर्कटरूप (बन्दररूप) मनोंको अपने पैरोंकी अँगुलियोंके पोरों पर नृत्य कराया करती है। उसका पाणि-ग्रहण करनेकी तुझमें ज़रा भी योग्यता नहीं है, इस बातको मैं भलीभाँति जानता हूँ।"

"अरे भले मानुस, तू भूलता है। तेरी मति केवल नृत्य करना ही जानती है। उसमें स्थिरताका और गहरी समझबूझका लेश भी नहीं है। इसी कारण तू मेरी अवहेलना करके और मेरी नम्रतायुक्त याचनाका तिरस्कार करके अपना और अपने कुटुम्बका द्रोह कर रहा है। क्या तू यह नहीं जानता है कि यदि तू अपनी सुन्दरी-कन्याका करकमल मुझे अर्पण कर देगा, तो वह करोड़ों-अरबोंकी ऋद्धिकी रानी बन जायगी, गुणोंका मूल्य न समझनेवाले लोगोंको प्रसन्न करनेके लिए प्राणोंकी बाजी लगाकर जो तू तरह तरहके शारीरिक खेल दिखलाया करता है, उनसे तुझे सदासे लिए छुट्टी मिल जायगी और एक उच्चकुलसे सम्बन्ध हो जानेके कारण तू अपनी असाधारण उन्नति कर सकेगा?"

"नादान लड़के, तू फूटे चश्मेसे देखता है और झूठी तराजूसे तौलता है। क्या मैंने अपनी पुत्रीको इसी लिए जन्म दिया है कि उसके द्वारा मैं धनाढ्य बनूँ और जिसे लोग 'प्रतिष्ठा' कहते हैं उस नाम मात्रकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिष्ठाको बढ़ाऊँ? क्या मेरी पुत्री ऐशो-आरामके साधनोंसे भरे हुए महलोंकी अपेक्षा मेरे तम्बूके भीतर रहकर कुछ कम सुख भोगती है? क्या मैं इतना पतित और नीच हो गया हूँ कि जिसको मैंने, नृत्य, गान संगीतादि नाना कलायें सिखलाकर बुद्धिशालिनी बनाया है उसकी बुद्धि पर मैं अपने स्वार्थके लिए अंकुश डालूँ और उसकी रुचि या पसन्दगीका ख़याल किये बिना उसे जीवनके एक जोखिमसे भरे हुए व्यापारमें उलझा दूँ? मेरी समझमें कन्याको इस व्यापारमें डालनेका अधिकार स्वयं उस कन्याके सिवाय और किसीको भी नहीं है; और तो क्या साक्षात् परमेश्वरको भी नहीं है। यह काम तुम्हें—किरानेके व्यापारियोंको ही मुबारिक रहे! तुम्हें यह शिक्षा जन्मघुट्टीके साथ ही दे दी जाती है कि सस्ते भावसे खरीदना और महँगे भावसे बेचना। इसलिए किरानेके माफ़िक कन्याको भी चाहे जिसके हाथ बेच डालनेका कार्य तुमसे ही बनसकता है। जो लोग कन्याको पत्नीरूपमें खरीद सकते हैं, वे उसे वेश्याके रूपमें बेच भी सकते हैं! यद्यपि वणिक् लोग स्त्रियोंको खुल्लमखुल्ला वेश्यापना नहीं करने देते हैं, परन्तु इसमें तो ज़रा भी सन्देह नहीं है कि जिस समाजमें मानसिक प्रेमके बिना बिबाह सम्बन्ध होता है उसमें पुरुष या स्त्री अथवा दोनों ही मानसिक व्यभिचार सेवन करते हैं। लोकलज्जाके भयसे वे शारीरिक व्यभिचार भले ही सेवन न कर सकें, पर गुप्त अनाचार सेवन करनेके अवसर तो ढूँढ़ते ही रहते हैं। हमारी जातिमें बालकसे लेकर वृद्धतक प्रत्येक स्त्री और पुरुष स्वयं परिश्रम करके पेट भरते हैं और जिन्हें स्वयंके परिश्रमसे पेट भरनेकी जोखिमदारीका ज्ञान है वे ऐसा कभी नहीं कर सकते कि अपने जीवनका हिस्सेदार किसी अयोग्य व्यक्तिको बनावें। 'उपयोग' ही हमारा मुख्य सिद्धान्त है और इसीलिए हमने अपनी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुत्रियोंको उनके लिए 'उपयोगी' हो, ऐसा वर पसन्द करनेका अधिकार दे रक्खा है। रूपको और धनको नहीं किन्तु कलाकौशल और बलको ही हमारी पुत्री पसन्द कर सकती है। अरे नादान वणिक्पुत्र, मुझे तेरी दशा पर बहुत दया आती है। तू मेरी पुत्रीके लिए तड़प तड़प कर आधा तो हो चुका है और आगे क्या होगा, सो भी मेरी आँखोंमें झलक रहा है। परन्तु क्या करूँ, तुझ पर दया करके मैं अपनी पुत्रीके जीवनभरके सुखको मिट्टीमें नहीं मिला सकता। मैं उसके सुखी बननेके स्वाभाविक अधिकारके मार्गमें कण्टक नहीं बन सकता। हाँ, तुझपर दया करके—किसी लोभके वश नहीं—मैं इतना कर सकता हूँ कि तुझे...."

"क्या तू मेरी हृदयेश्वरीसे मेरी पहचान करा देगा? यह बतलाकर कि मेरे साथ विवाह करके वह कितनी सुखी हो सकेगा क्या तू मेरी ओर उसका चित्त आकर्षित करनेकी कृपा करेगा? नटराज, मैं तेरे इस उपकारको जीवनभर नहीं भूलूँगा।"

"अनुभवहीन लड़के, इतना उतावला मत हो! इन हवाई किलोंके बनानेमें यदि कहीं तेरी कल्पनाशक्ति नीचे गिरकर चूर हो गई तो तेरा जीवन और भी अधिक दुःखमय बन जावेगा। मैं तुझे अपनी पुत्रीके पास तक जानेकी छुट्टी देता हूँ; और यह केवल तुझ पर दया करके—तेरे प्राणोंके बचानेके लिए देता हूँ। परन्तु सावधान! कहीं इससे तू बड़ी बड़ी आशायें मत बाँध लेना। क्योंकि वह भी एक आत्माभिमानिनी और सुचतुरा कन्या है और ऐसी मूर्ख नहीं है कि अपने भागीदारकी पसन्दगी करनेमें किसी तरह ठगाई जासके। मुझे इस बात पर ज़रा भी विश्वास नहीं है कि तेरी लक्ष्मी और सौन्दर्यके तेजमें वह चकचौंधा जायगी और इसी कारण मैं तुझे उसके समीप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक जाने देनेमें कोई हानि नहीं देखता। तथापि यदि तेरी इच्छा ही है, तो तू खुशीसे उसके हृदय पर अधिकार करनेका प्रयत्न कर देख।"

"नटराज, तुमने मुझ पर बड़ी भारी कृपा की! यद्यपि तुम्हारे शब्द बहुत ही गर्वसे भरे हुए हैं तथापि वास्तवमें वे गंभीराशय हैं और सच्चे हृदयसे निकले हुए हैं। इस समय तो इन शब्दोंने मुझे मृत्युमुखमें जानेसे बचा लिया है। अच्छा, तो मैं तुम्हारी आज्ञासे उस हृदयेश्वरीसे जाकर मिलता हूँ और अपने भाग्यकी परीक्षा करता हूँ।"

वणिक्पुत्रका नाम एलाकुमार है। वह नटको प्रणाम करके अपने सुन्दर कोठेमेंसे बाहर निकला और उससे कहता गया कि जब तक मैं वापस न आजाऊँ तब तक तुम यहीं ठहरना।

ऊपर लिखी हुई बातचीतसे पाठक समझ ही गये होंगे कि यह युवा वणिक्पुत्र नटकी लड़की पर मोहित हो गया है और हर तरहके कष्ट सहन करके उसे अपनी पत्नी बनानेके लिए आतुर हो रहा है। अभी कुछ ही दिन पहले नटने अपने आश्चर्यजनक खेल दिखलाये थे। उस समय उसकी कन्या भी साथमें थी। श्रेष्ठिपुत्रकी दृष्टि सारे खेलोंकी अवहेलना करके नटकन्यापर जा अटकी और उसका परिणाम यह हुआ कि उसने अपना तनमनधन उस सुन्दरी प्रतिमा पर न्योछावर कर दिया। उसने मनही मन निश्चय किया कि यदि यह मनोमोहिनी न मिलेगी तो इस नीरस शुष्क जीवनको बलपूर्वक समाप्त कर दूंगा। उसने अपना यह विचार अपने पिताके सम्मुख भी स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कर दिया। उसका पिता इभ्यश्रेष्ठी इलावर्धन नगरका सबसे बड़ा धनी सेठ था। सेठने अपने प्यारे इकलौते पुत्रको इस अनुचित साहससे दूर रहनेके लिए बहुत कुछ समझाया, अपनी जाति और प्रतिष्ठाका स्मरण दिलाया और यह भी कहा कि इस नटकन्यासे भी अधिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूपलावण्यवती, उच्चकुलकी कन्याके साथ तेरा पाणिग्रहण करा दूँगा। परन्तु उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो गये। जब देखा कि पुत्रका चित्त ठिकाने नहीं है—बिलकुल परतंत्र हो रहा है, तब उसने कुछ समयके लिए इस विषयकी चर्चा ही छोड़ दी और अवसर मिलने पर उसके समवयस्क मित्रोंके द्वारा समझाने बुझानेका निश्चय किया।

एलाकुमारने पिताके और मित्रजनोंके समझाने बुझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। एक दिन उसने किसी बहानेसे नटको अपने कोठेमें बुलाया और लाखों सुवर्णमुद्राओंके बदले उसकी पुत्रीके हाथकी याचना की! जैसा कि ऊपर प्रकट हो चुका है, इस याचना और लालचके सम्मुख उस स्वाभिमानी नटने बहरे कान कर लिये और पुत्रीकी खुदपसंदगी पर सारी बातें छोड़ दीं। अब एलाकुमार नटपुत्रीके निकट गया है और कदाचित् पाठकोंका चित्त भी उस असाधारण चित्ताकर्षिणी, भुवनमोहिनी सुन्दरीकी बातचीत सुननेके लिए तड़प रहा होगा। अच्छा तो आइए, हम सब उसके मार्मिक शब्दोंके सुननेका प्रयत्न करें।

(२)

इलावर्धन नगरके बाहर मैदानमें एक तम्बू खड़ा है। उसके एक कोनेमें वह नटपुत्री अपने स्वयं कल्पना किये हुए एक नवीन प्रकारके नृत्यका अभ्यास कर रही है। एक बेजान पहचानके पुरुषको अपनी ओर आता देखकर उसने नृत्य बन्द कर दिया। समझा कि कोई धनी पुरुष अपने जल्सेका निमन्त्रण देनेके लिए आया है, इस लिए उसे सत्कार-पूर्वक आसन देकर आप सामने बैठ गई और आगमनका कारण पूछने लगी। एलाकुमारने डरते डरते सब बातें प्रकट कर दीं और अन्तमें कहा—"सुन्दरी, इसके पहले कि तुम मुझे कुछ उत्तर दो मेरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस निश्चय पर अवश्य ख़याल कर लेना कि तुम्हारा 'न' मेरी अकालमृत्युका कारण बन जायगा। तुम जैसी बुद्धिशालिनी मनोमोहिनीके लिए मैं अपना सर्वस्व अर्पण कर देनेके लिए तैयार हूँ और तुम्हारी कठिनसे कठिन शर्तके स्वीकार करनेमें मैं ज़रा भी आनाकानी न करूँगा। इससे तुम जान सकती हो कि मेरा तुम्हारे ऊपर कितना सच्चा और सम्पूर्ण प्रेम है।"

यह सुनकर नटपुत्री हँस पड़ी और फिर बोली—"श्रेष्ठिपुत्र, यदि कोई बालक अपने पितासे कहे कि चन्द्रमाको मेरे खीसेमें लाकर रख दो और पिता उसकी उक्त इच्छाको तृप्त कर सकता हो, तो मैं भी तुम्हारी इस सच्चे हृदयकी किन्तु अशक्य प्रार्थनाको बड़ी खुशीसे स्वीकार कर सकती हूँ। तुम्हारी प्रार्थनाको 'अशक्य' कहनेसे तुम्हें कितना दुःख होता है, सो तुम्हारे चेहरेके बदलते हुए रंगपरसे स्पष्ट दीख पड़ता है और गीतनृत्यकी कलाओंसे कोमल बना हुआ मेरा हृदय उस रंगको देखकर दुखी भी होता है। तथापि मुझे अपने कुलका, अपने व्यापारका और अपने गौरवका भी ख़याल रखना ज़रूरी है। एक तो यह संभव नहीं है कि तुम मेरे आदरणीय व्यवसायमें उपयोगी या सहायक बन सकोगे। दूसरे, तुम हर कोई शर्तको स्वीकार करनेके लिए कहते तो हो; परन्तु अपनी जातिको बिना किसी संकोचके राजीनामा देकर मेरी जातिमें मिलनेका साहस कर सको, यह मुझे असंभावित मालूम होता है। तीसरे, तुम्हारी जो अटूट लक्ष्मी है वह तुम्हारे और मेरे बीचके प्रेममें किसी दिन बाधा डालनेवाली बन सकती है। इसलिए जब तक तुम अपने सारे धन परसे अपना अधिकार छोड़कर मेरे पाणिग्रहणकी याचना न करो, तब तक मुझे आशा नहीं है कि मैं तुम्हारे साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकूँगी। हे सुन्दर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युवक, मुझे खेद है कि जब तक मेरे और तुम्हारे बीचमें ये बड़े बड़े विघ्नरूप किले खड़े हैं, तब तक मैं तुम्हें निराशाकी खाईमें गिरनेसे नहीं बचा सकती।"

एलाकुमारके वदनमण्डलपर आशाके चिह्न दिखलाई देने लगे। वह आसनपरसे उठ बैठा और नटपुत्रीका हाथ धीरेसे अपने हाथमें लेकर बोला—"प्राणवल्लभे, (यदि इस शब्दसे सम्बोधन करनेकी तुम मुझे अनुमति दो, तो) तुम्हारी कृपासे इन सारे विघ्नों और संशयोंके किलोंको धराशायी करनेकी मुझमें शक्ति है। जातिके बन्धनको मैं इसी समय तिलांजुलि देता हूँ, और अब्जोंकी सम्पत्ति पर मैं लात मारता हूँ। यद्यपि मैं इस बातको अभी निश्चित शब्दोंमें नहीं कह सकता हूँ कि मैं तुम्हारे काममें कितनी सहायता पहुँचा सकूँगा, तथापि इतना विश्वास इसी समय दिला सकता हूँ कि नटकला सीखनेके लिए मैं इसी क्षणसे अश्रान्त परिश्रम करूँगा और हे रंभोरु, जब तक मैं इस कलामें पारंगत न हो जाऊँगा—तेरा सुयोग्य सहायक और भागीदार न बन जाऊँगा, तब तक तेरे सम्मुख 'प्रेम' या 'विवाह' का एक शब्द भी कभी उच्चारण न करूँगा।"

युवाके एक एक शब्दसे नटकन्याका हृदय उद्वेलित होने लगा। उसे उसके सच्चे प्रेम, प्रामाणिक निष्ठा, गहरी प्रतिज्ञा और अमूल्य आत्मबलिकी ओर बहुत ही आदरभाव उत्पन्न हुआ और इस आदर भावमें उस प्रेमीके प्रस्फुटित यौवन और सौन्दर्यने तो और भी वृद्धि की जिससे कि वह तत्काल ही प्रेमरूपमें परिवर्तित हो गया। तथापि स्त्री जातिकी स्वाभाविक लज्जाशीलताके कारण उसने अपना यह कोमल मनोभाव दबा रक्खा; उसके मुँहसे एक भी शब्द न निकला—वह चुप चाप नीचेकी ओर देखती हुई स्थिर हो रही। एलाकुमार उसके मनो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावको जान गया और उत्साहमें आकर उसके हाथको चूमकर बोला– "वल्लभे, मेरी इस ढीठताको क्षमा करना; और जिस तरह यह चुम्बन पहला है उसी तरह--यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेमें सफल न होऊँ तो इसे ही अन्तिम समझ लेना। प्रिये, मुझ पर दया करो और अपने कुटुम्बके साथ रखके नटकला सिखलानेकी मेरी प्रार्थना अपने पिता पर प्रकट कर दो। जहाँ तक बने इस बातका भी प्रयत्न करो कि कल यहाँसे अपना डेरा कूच हो जाय जिससे कि मुझे अपने पिताकी ओरकी किसी रुकावटका भय न रहे।"

नटसुन्दरीका हृदय नवनीतकोमल हो गया। मस्तक नीचा करनेके सिवाय वह कुछ भी उत्तर न दे सकी। एलाकुमार वहाँसे बिदा हुआ और मार्गप्रतीक्षा करते हुए नटसे जाकर मिला। उसके मुँहसे सब बातें सुनकर नटको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद वह अपने डेरे पर चला आया और अपनी पुत्रीसे भी सब समाचार सुनकर कूच करनेकी तयारी करने लगा।

एलाकुमारने अपने पिताको एक पत्र लिखा और उसमें सब वृत्तान्त लिखकर अन्तमें यह निवेदन कर दिया कि मेरी ढूँढ़ खोज न की जाय। यह पत्र उसने अपने नौकरको दे दिया और आप उसी समय शहर छोड़कर उस नगरको चला गया जहाँ नटने अपने पहुँचनेकी सूचना दे दी थी। दूसरे दिन नट भी उससे जा मिला और कुमार उसके कुटुम्बमें रह कर नटकलाका अभ्यास करने लगा।

अभ्यासके बदलेमें जहाँ ऐसा अलौकिक रत्न मिलनेकी आशा हो, वहाँ फिर और कौनसा साधन चाहिए? केवल छह महीनेमें वह अनेक प्रकारकी कसरतें और नृत्य सीख गया और अन्तमें यह निश्चय हुआ कि अपनी कलामें उसने कितनी योग्यता प्राप्त की है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसकी परीक्षाके लिए वह किसी दरबारमें अपने खेल दिखाकर राजाको प्रसन्न करे।

(३)

नट अपनी मण्डलीसहित बेनातट नगरमें पहुँचा है। वहाँके राजाने नटकला देखनेकी इच्छा प्रकट की है। राजमहलके विशाल चौकमें अश्चर्यजनक कसरतों और खेलोंमें काम आनेवाली तरह तरह की चीजें सजाई गई हैं। खंभे गड़ाये गये हैं, झूला बाँधे गये हैं और जमीनमें गड़े हुए दो ऊँचे बाँसोंके बीच धातुका एक बारीक तार लगाया गया है। राजा और दरबारी पुरुष चौकके एक भागमें अपनी अपनी योग्यताके अनुरूप आसनों पर बैठे हैं। महलके छज्जों और झरोखोंमें रानियाँ और अन्तःपुरकी अन्य स्त्रियाँ भी तमाशा देखनेके लिए दम साधे हुए बैठी हैं।

एक सुन्दर और सुडौल युवा जरीका जाँघिया कसे हुए चौकमें उपस्थित हुआ। उसपर दृष्टि पड़ते ही दर्शकोंके हृदयों पर एक प्रकारका मोहित करनेवाला प्रभाव पड़ा। यह युवा पाठकोंका पूर्वपरिचित श्रेष्ठिपुत्र एलाकुमार ही था।

एकके बाद एक खेल सफलताके साथ होने लगे। दर्शकगण तालियाँ पीट पीटकर हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करने लगे। सबके अन्तमें सबसे अधिक जोखिमका—धातुके तार पर नृत्य करनेका खेल शुरू हुआ। एलाकुमार एक हाथमें चमचमाती हुई तलवार और दूसरे हाथमें ढाल लेकर आकाशके साथ बातें करनेवाले उस बारीक तार पर खड़ा हुआ और नृत्यकलाके तथा पटा खेलनेके आश्चर्यजनक कौतुक दिखलाने लगा। इस प्रयोगमें उसने आशातीत सफलता प्राप्त की। दर्शकोंने एक स्वरसे कहा—"शाबास! नटराज शाबास! शरीर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधन विद्याकी हद हो चुकी!" परन्तु राजाके मुँहसे एक भी प्रशंसा-सूचक शब्द न निकला। बात यह थी कि उस समय उसकी दृष्टि नटकन्याके सुगठित शरीरमें उलझ रही थी और उसके साथ मानसिक व्यभिचार सेवनमें रत थी। इसलिए उसने देखते हुए भी कुछ न देखा। वह बोला—"अच्छा इस अन्तिम प्रयोगको एक बार और भी करके दिखलाओ।" आज्ञा पाते ही एलाकुमार फिरसे बाँस पर चढ़ गया और नटकन्या अपने मनोमोहनकी थकावट मिटाने और उत्साह बढ़ानेके लिए बाँसके समीप खड़ी होकर उत्तेजक गीत गाने लगी और साथ ही उत्साहप्रेरक ढोलको ध्वनित करने लगी। इसका फल राजाके चित्त पर और भी विलक्षण हुआ। रूपके मोहके साथ कण्ठका मोह और मिल गया। राजा अपने पदको भूल गया और केवल इसी बातके विचारमें तन्मय हो गया कि इस सुन्दरीको कैसे प्राप्त करूँ। इसी बीचमें एलापुत्रका दूसरी बारका खेल पूरा हो गया। वह नीचे उतर कर महाराजके सामने मस्तक झुकाकर खड़ा हो गया। राजाने इस बार भी कुछ प्रसन्नता प्रकट न की और तीसरी बार खेल करनेकी आज्ञा दी।

अबकी बार दर्शकोंको यह समझनेमें कुछ भी बाकी न रह गया कि राजाकी आन्तरिक इच्छा क्या है। उनके हृदयमें राजाके प्रति तिरस्कारकी वर्षा हो रही थी, परन्तु स्वेच्छाचारके जन्मसिद्ध अधिकारको लेकर पृथ्वीमें अवतार लेनेवाले राजाओंके मार्गमें कंटक बिछानेका साहस किसे हो सकता है? दूसरोंके परिश्रमसे लक्ष्मीवान् बनना, उस लक्ष्मीसे प्रत्येक इन्द्रियकी षोड़शोपचार पूजा करना, अपने प्रबल लोभ और मानको पुष्ट करनेके लिए सैकड़ों—हजारों—लाखों मनुष्योंकी बलि लेना और ऐसी बलिको 'देशभक्ति,' 'राजभक्ति' ठहराना, इन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सब बातोंका हक इन्हें जन्मसे मिला हुआ होता है। इसलिए इनकी इच्छाके विरुद्ध शब्दोंका उच्चारण करना राजद्रोह कहलाता है और जो इस तरहका साहस करनेपर उतारू होता है, उसे अपनी इज्जत-से ही नहीं—जिन्दगीसे भी हाथ धोना पड़ता है। गरज यह कि राजासे कोई कुछ न कह सका; और तो क्या उसके शरीरकी सर्वथा अधिकारिणी महाराणी भी अपने अधिकारको जोखिममें जाता हुआ देखकर कुछ न बोल सकी। देखिए, यह कैसी शोचनीय दासता या गुलामी है। इस पर तुर्रा यह कि हम लोग इसी गुलामीको राजभक्ति और पातिव्रत्य कहकर फूले अंग नहीं समाते हैं! ऐसी अधम मानसिक दुर्बलतासे—राजा या पतिमें इस प्रकार सीमासे अधिक पूज्यपना स्थापित करनेसे हमें समय समय पर बहुत ही बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े हैं। आत्माभिमान क्या चीज है और हमारे मनुष्यत्वसम्बन्धी कुछ अधिकार हैं या नहीं, अफसोस, कि इन बातोंके जाननेकी भी हमें मनाई की जाती है। हम इस आत्माभिमान और अधिकारको—जो कि प्रकृतिदत्त या स्वाभाविक है—प्रसन्न करनेकी अपेक्षा मनुष्यकृत रूढ़ियों और मनुष्यकृत राजाओंको हर तरहके कष्ट सहन करके प्रसन्न करना, अधिक पसन्द करते हैं। राजा, पति और समाजकृत रूढ़ियोंके आदरके लिए अन्याय और अत्याचार भी सहन करना; इतना ही नहीं, अन्यायाचरण करते हुए देखकर भी 'न' न करना और इस तरह अपने तथा अपने कुटुम्बके न्याय्य सुखोंको भी होम कर देना ये सब बातें इस देशमें 'भक्ति' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

हमने जब तक इस भक्तिका रोना रोया, तब तक एलाकुमारका तीसरी बारका खेल भी हो गया और फिर वैसी ही आज्ञा मिलनेके कारण वह चौथी बार बाँस पर चढ़ गया। उसे राजाकी व्यभिचा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रिणी बुद्धिका पता लग चुका था। यदि वह उस प्राणवल्लभाके पाणि ग्रहणके लिए किसी राजाको प्रसन्न करनेकी प्रतिज्ञा न कर चुका होता तो यह चौथी बारका प्रयत्न कदापि न करता। इसमें वह अपना बड़ा भारी अपमान भी समझता था। उसका साहस शिथिल हो रहा था कि इतनेमें गद्गतचित्ता नटकन्याने उसको उत्तेजित किया और अन्तमें उसके कानके पास जाकर कह दिया—"मुझे इस कारण बड़ा ही कष्ट हो रहा है कि तुम्हें इस अपमानभरे हुए कष्टमें डालनेवाली मैं ही हूँ। परन्तु प्यारे, तुम मुझे अपने दृढ़ निश्चय और सच्चे हृदयसे वरण कर चुके हो, इसलिए अब तुम्हारा यही खेल अन्तिम खेल होगा। राजा प्रसन्नता प्रकट करे या न करे, पर मैं तुम्हें अपना जीवनसंगी पति बनानेके लिए तैयार हूँ। मैं इसी समयसे तुम्हारी हो चुकी।"

"मैं तुम्हारी हो चुकी" इन शब्दोंने उस थके हुए नटके शरीरमें बलशालिनी बिजली दौड़ा दी। वह चौथी बार तार पर चढ़ा और लगभग पाँच गज चलकर तारको हिंडोलेके समान हिलाने लगा और साथ ही दोनों हाथोंसे पटा खेलने लगा। दर्शकगणोंकी तालियोंसे आकाश गूँजने लगा। इसके बाद वह आगे बढ़ा और तार पर अद्भुत नृत्य करने लगा। इस समय सबकी दृष्टि उसके पैरोंमें स्थिर हो रही थी; परन्तु स्वयं उसकी दृष्टि एक और ही दृश्य देख रही थी। राजमहलसे थोड़ी ही दूर पर किसी गृहस्थका सुन्दर घर था। उसमेंसे एक अलौकिक रूपलावण्यवती युवती शीघ्र गतिसे बाहर निकली और एक फटेहाल परन्तु युवा साधुके सामने खड़ी होकर कहने लगी "भगवन्, अपने चरणोंकी रजसे मेरे घरको पवित्र कीजिए और शुद्ध अन्नजल ग्रहण करके मुझे भाग्यशालिनी बनाइए।" साधु चुपचाप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके पीछे चलने लगा और युवतीके घरकी पौरमें जाकर खड़ा हो गया। इतनेमें वह युवती भीतर गई और एक सोनेके थालमें तरह तरहके पक्वान्न सजाकर ले आई तथा उन्हें स्वीकार करनेके लिए साधुसे विनती करने लगी। तार पर नृत्य करता हुआ नट देखता है कि वह साधु न तो ऊँची दृष्टि करता है और न उस पक्वान्नको ग्रहण करता है। इसके बाद वह नीची दृष्टि किये हुए यह कहकर मन्दगतिसे लौटने लगा कि—"हम सर्वसंगत्यागियोंके लिए पौष्टिक आहार लेना वर्जित है। यदि कोई नीरस लघु भोजन होता तो कदाचित् ग्रहण कर लिया जाता।"

नट सोचने लगा—"कैसे आश्चर्यकी बात है कि एक युवा है और दूसरी युवती है। ऐसे एकान्तस्थानमें कि जहाँ और कुछ नहीं तो एक छुपी नज़रसे देख लेनेमें कोई रुकावट नहीं थी, इस साधुने सामने ऊँची दृष्टि करके भी न देखा! यह अनुपम सुन्दरी जिसके शरीरमेंसे यौवनका मद छलका पड़ता है—प्रार्थना कर रही है और अतिशय नम्र हो रही है; पर इस युवाने न उसकी ओर देखा और न अन्नको ही स्पर्श किया। इसके चित्तकी दृढता और स्वाधीनताका कुछ ठिकाना है! कहाँ इसकी निस्पृहता और कहाँ मेरी लालसा! कहाँ इसकी आत्मतुष्टि और कहाँ मेरी विभाववृत्ति! कहाँ इसकी सम्पूर्ण शान्ति और कहाँ मेरी क्षणक्षणमें हिंडोलेसे होड़ लगानेवाली भ्रान्ति! धन्य है! करोड़ों बार धन्य है इस पुरुषसिंहको!....परन्तु, क्या मैं भी पुरुष नहीं हूँ? क्या मैंने केवल छह महिनेहीमें काठिनसे काठिन विद्या प्राप्त नहीं की है? तब फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि ऐसी अडोलवृत्ति प्राप्त करनेकी योग्यता मुझमें नहीं है? क्षणिक इन्द्रिय-भोगोंके लिए यदि मैं अटूट धन, उच्च कुल और चित्तकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वस्थताका बलिदान कर सकता हूँ, तो क्या अक्षय सुखकी प्राप्तिके लिए इन सांसारिक भोगोंको उत्सर्ग नहीं कर सकूँगा?" इस तरहके विचारोंकी अटूट परम्परा उस नटके मनमें उठने लगी और उनका वेग--उनकी शक्ति इतनी बढ़ी कि उसके आसपासकी अज्ञानता और निर्बलताके सारे किले बातकी बातमें गिर गये और भीतरका सूर्य प्रकाशित हो उठा! तारपर नृत्य करता हुआ नट एक क्षणमें एक पूजनीय पुरुष बन गया!

—जैनहितेच्छु।

चरित्र-गठन और मनोबल।

हम अपने जीवनके प्रत्येक समयमें ऐसी अनेक नई नई आदतें सीखते रहते हैं जिनका हमें ज्ञान भी नहीं होता। उनमेंसे कुछ आदतें तो बहुत अच्छी होती हैं, परन्तु कुछ बहुत बुरी होती हैं। कुछ ऐसी होती हैं कि स्वयं तो वे बहुत बुरी नहीं होतीं, परन्तु आगे चल कर उनके फल बहुत ही बुरे होते हैं और उनसे बहुत कुछ हानि, कष्ट और पीड़ा पहुँचती है। कुछ उनसे बिलकुल उलटी होती हैं जिनसे सदा हर्ष और आनन्द बढ़ता रहता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या अपनी आदतें बनाना सदा अपने अधिकारमें है? क्या यह बात हमारे हाथमें है कि हम जिस तरहकी चाहें अपनी आदतें बना लें, जिस आदतको चाहें ग्रहण करें और जिस आदतको चाहें छोड़ दें? इसका संक्षिप्त उत्तर यह है कि हाँ, यह बात बिलकुल हमारे हाथमें है। हम अपना चरित्र चाहे जैसा बना सकते हैं। **मनुष्य वही हो जाता है जो वह होना चाहता है।** यह शक्ति मनुष्यमात्रमें स्वाभाविक है। परन्तु यह शक्ति उस समय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक कुछ भी कार्यकारी नहीं, जब तक इसका उपयोग मालूम न हो। अतएव पहले इसका उपयोग बताना ज़रूरी है।

सबसे पहले मनुष्यको इस स्वाभाविक शक्तिके अस्तित्व और कार्यका सम्यक् श्रद्धान होना चाहिए। पश्चात् उस महान् नियम पर विचार करना चाहिए जिसपर चरित्रगठनकी नींव रक्खी जाती है, जिसके अनुसार प्रवृत्ति करनेसे पुरानी, बुरी, खोटी और नीच आदतें छूट जाती हैं, और नई, अच्छी और ऊँची आदतें पैदा हो जाती हैं, और जिससे जीवनमें सर्वदेश वा एकोदेश परिवर्तन हो सकता है। इसके लिए केवल एक बातकी ज़रूरत है और वह यह है कि मनुष्य पहले उस नियम पर सच्चे दिलसे विचार करे, और फिर उसके अनुसार कार्य करनेका दृढ़ संकल्प करे।

मनोबल ही मनुष्यके सम्पूर्ण कार्योंका उत्तेजक है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्यका प्रत्येक कार्य जो संकल्प द्वारा किया जाता है एक विचारका परिणाम है। जिस कार्यका जितना अधिक विचार किया जाता है वह कार्य भी उतना ही अधिक होता है। जो कार्य बार बार किया जाता है, वह धीरे धीरे आदतका रूप धारण करने लगता है। अनेक आदतोंके समूहका नाम ही चरित्र है। इसीको अँग-रेज़ीमें करैक्टर Character और हिन्दीमें 'चालचलन' कहते हैं। इसलिए तुम जिस तरहके काम करना चाहते हो और जैसा अपने आपको बनाना चाहते हो उसी तरहके विचार तुम्हारे दिलमें आने चाहिए। जो काम तुम करना नहीं चाहते, जिस आदतको तुम ग्रहण करना नहीं चाहते, उनके पैदा करनेवाले विचार कभी क्षणमात्रके लिए भी तुम्हारे मनमें न आने चाहिए।

यह एक मानी हुई बात है और इसमें किसीको तनिक भी विवाद नहीं है कि यदि मनमें कोई विचार कुछ समयतक बराबर आता रहे तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह (विचार) धीरे धीरे मस्तकके उस भागमें पहुँच जायगा कि जहाँ वह अंतमें कार्यका रूप अवश्य धारण कर लेगा; अर्थात् जहाँ पहुँच कर वह शरीरको अपने अनुसार कार्य करनेके लिए बाधित कर देगा। अब यदि वह विचार अच्छा है तो उसका फल भी अच्छा होगा और यदि वह विचार बुरा है तो उसका परिणाम भी बुरा होगा। हत्या, वध आदि जितने भी बुरे कर्म हैं सब इसी तरह होते हैं और इनके विपरीत जितने उत्तम कार्य हैं, वे भी इसी तरह होते हैं।

समझने और याद रखनेकी बात है कि प्रत्येक कार्यका कारण विचार है; परन्तु किसी प्रकारके विचारको मनमें रखने या न रखनेका हमें पूर्ण अधिकार है। हम अपने मनके स्वतंत्र राजा हैं। पूर्णरूपसे वह हमारे वशमें है और हमको सदैव उसे अपने वशमें रखना चाहिए। यदि कभी वह वशमें न रहे, तो उसके वशमें करनेका एक उपाय है। उसके अनुसार चलनेसे हम मन और विचार दोनोंको अपने अधिकारमें कर सकते हैं।

मनुष्यके शरीरमें यह गुण है कि उसमें किसी कामको बार बार करनेसे उस कामके करनेकी शक्ति बढ़ती जाती है। पहली बार किसी कामके करनेमें जितनी कठिनाई होती है उससे कहीं कम उसी कामको दूसरी बार करनेमें होती है और उससे भी कहीं कम तीसरी बार करनेमें और तीसरी बारसे भी कम चौथी बारके करनेमें होती है। गरज यह कि हर बार कठिनाई कम होती जायगी और आसानी अधिक मालूम होती जायगी। धीरे धीरे एक दिन वह काम बिलकुल आसान हो जायगा और उसमें ज़रा भी कठिनाई न रहेगी। परन्तु हाँ, उससे उल्टा करनेमें बड़ी कठिनाई मालूम होगी। ठीक यही हालत मस्तककी भी है। एक विचार पहली बार ज़रा कठिनाईसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पैदा होता है। दूसरी बार उससे आसानीसे, तीसरी बार उससे भी ज्यादह आसानीसे, इसी प्रकार ज्यादह ज्यादह आसानी होती जायगी और वह विचार धीरे धीरे मनका एक अंग हो जायगा। अब इसको दूर करना कठिन हो जायगा। परन्तु स्मरण रहे कि संसारमें कोई काम कठिन भले ही हो, परन्तु असम्भव कोई भी नहीं है। धीरे धीरे अभ्यास करनेसे कठिनसे कठिन काम भी सरल हो जाता है। यह प्रत्यक्षसिद्ध सिद्धान्त सर्वमान्य है। इसमें किसीको कोई भी शंका नहीं हो सकती है। इसी सिद्धान्तको दृष्टिमें रखते हुए प्रत्येक मनुष्य अपने विचारोंको वशमें कर सकता है और उनपर अधिकार पा सकता है। यदि शुरूमें सफलता न हो, या कुछ समय तक होती न दीखती हो तो कोई परवा नहीं। निराश कभी मत होओ। उद्योग कभी निष्फल नहीं जाता। बार बार कोशिश करो। बार बारकी कोशिशसे एक न एक दिन अवश्य सफलता होगी। जिस कामको तुम कठिन समझते हो वह सरल हो जायगा और जिन विचारोंको अभी तुम वशमें नहीं कर सकते थे उन्हीं विचारों पर तुमको पूर्ण अधिकार हो जायगा।

अतएव प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारोंको वशमें कर सकता है और मनुष्यमात्र इस शक्तिको प्राप्त कर सकता है कि चाहे जिस प्रकारके विचारोंको अपने मनमें आनेसे रोक दे। क्योंकि यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है और हमें इसे कभी न भूलना चाहिए कि किसी भी कामके लिए हमारी प्रत्येक बारकी कोशिश उस कामको ज्यादह आसान बना देती है, चाहे शुरूमें असफलता ही क्यों न हो। अर्थात् चाहे शुरूमें हमें किसी काममें सफलता न हो, तो भी ज्यों ज्यों वह काम किया जायगा त्यों त्यों उसमें ज्यादह आसानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती जायगी। ऐसी दशामें असफलतामें भी सफलता है। क्यों कि उद्योगमें तो असफलता होती नहीं और उद्योग चाहे जब किया जाय काम करनेकी शक्तिको ही बढ़ाता है। एक न एक दिन अवश्य सफलता होगी और हमारी मनोकामना पूर्ण होगी। अतएव यह बात सिद्ध है कि हम अपने विचार चाहे जिस तरहके बना सकते हैं और चाहे जैसा अपना चरित्र निर्माण कर सकते हैं।

यहाँ पर दो तीन उदाहरण दिये जाते है। आशा है कि उनसे यह विषय बिलकुल स्पष्ट हो जायगा।

मान लो कि एक आदमी किसी बड़ी कम्पनीका कोषाध्यक्ष (खजानची) या किसी बेंकका मैनेजर है। एक दिन उसने एक समाचारपत्रमें पढ़ा कि एक मनुष्यने सिर्फ़ चार ही पांच घंटोंमें किसी सौदेमें कई लाख रुपये कमा लिये। थोड़े ही दिनके बाद उसने फिर एक ऐसे ही मनुष्यका हाल पढ़ा। अब उसके जीमें भी ऐसी ही लालसा पैदा होने लगी। वह विचार करने लगा कि ये आदमी कितनी थोड़ी देरमें लखपती हो गये! मैं भी इन्हीं-का अनुकरण करके शीघ्र लखपती हो जाऊँगा। यही विचार उसके मनमें रात दिन घूमने लगा। उसने ऐसे दो चार आदमियोंका हाल तो पढ़ा जो एक बारगी अमीर हो गये, परन्तु यह उसने कभी नहीं सोचा कि ऐसे भी बहुतसे आदमी हैं जो ऐसा करनेसे अपनी सारी पूँजी खोकर भिखारी हो बैठे हैं। उसकी इच्छा दिनोंदिन बढ़ने लगी। अन्तमें एक दिन उसने अपनी तमाम पूँजी वैसे ही किसी काममें लगा दी। परिणाम वही हुआ जो प्रायः ऐसी दशाओंमें हुआ करता है अर्थात् उसको घाटा पड़ गया। उसकी सारी पूँजी जाती रही। अब वह विचार करता है कि अमुक कारणसे मुझे सफलता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हुई। यदि मेरे पास और रुपया होता तो मैं अवश्य घाटेको पूरा कर लेता और साथमें बहुत कुछ और भी कमा लेता। अब यह विचार बार बार उसके मनमें आता है, और वह सोचता है कि मेरे हाथमें बैंकका जो रुपया है, यदि मैं उसे लगा दूँ, तो इसमें कोई हानि नहीं है। शीघ्र ही जो रुपया कमाऊँगा उसमेंसे दे दूँगा। ऐसी छोटीसी रकमका अदा कर देना कोई कठिन बात नहीं। अन्तमें एक दिन उससे नहीं रहा जाता और वह बैंकके रुपयोंको भी जो उसके अधिकारमें हैं लगा देता है और खो बैठता है। ऐसी घटनायें प्रतिदिन ही देखने और सुननेमें आती हैं। इनका कारण क्या है? दूसरेके रुपयेको अपने उपयोगमें लानेका वही एक बुरा विचार। यदि कोई बुद्धिमान होता तो मनमें आते ही उस विचारको निकाल देता और अपनी बुरी इच्छाको दबा लेता, परन्तु वह मूर्ख था। उसने उसे स्थान दिया। जितना जितना वह उसे स्थान देगा उतना उतना ही वह विचार बढ़ता जायगा और अन्तमें वह विचार इतना ज़ोरदार हो जायगा कि फिर कार्यरूपमें ही परिणत होता दिखलाई देगा और उसका परिणाम घृणा, अपमान, शोक और पश्चात्ताप होगा। शुरूमें ही जब मनमें कोई विचार उठता है तब उसका हटा देना आसान होता है। बादमें उसका ज़ोर बढ़ता जाता है और उसका हटाना उत्तरोत्तर कठिन होता जाता है। दियासलाई कितनी छोटी चीज़ है। शुरूमें उसके बुझानेके लिए केवल एक फूँक काफ़ी है; परन्तु यदि वह किसी चीज़में लग जाय, तो घरभरमें आग लगा देगी और फिर उसका बुझाना कठिन हो जायगा।

एक और उदाहरण लीजिए। इससे यह मालूम होगा कि किस तरह किसी चीज़की आदत पड़ जाती है और किस तरह वही आदत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छूट जाती है। मान लो कि एक नवयुवक है। चाहे उसके मातापिता धनवान् हों चाहे निर्धन, इससे कुछ मतलब नहीं। चाहे वह उच्च जातिका हो, चाहे नीच जातिका, इससे भी कुछ तात्पर्य नहीं। हाँ, इतना ज़रूर है कि वह एक नेक सदाचारी लड़का है। एक दिन वह अपने मित्रोंके साथ सन्ध्याके समय सैर कर रहा है। उसके मित्र भी वैसे ही साधारण स्थितिके सभ्य सदाचारी लड़के हैं, परन्तु प्रायः साधारण लड़कोंके समान वे भी कभी कभी भूल कर बैठते हैं। ऐसा ही उस दिन भी हुआ। उनमेंसे एकने कह दिया कि चलो, आज किसी जगह चलकर साथ साथ खावें। इसमें कुछ भी कठिनाई नहीं हुई; सब हँसते खेलते उस स्थान पर पहुँच गये। वहाँ उनमेंसे एक लड़क बोला कि भाई, कुछ पीनेको भी चाहिए। उसके बिना कुछ आनन्द न आयगा। अब हमारा नवयुवक उस समय इंकार करना सभ्यताके प्रतिकूल और मित्रताके नियमोंके विरुद्ध समझकर हाँमें हाँ मिला देता है। विवेक अंदरसे रोकता है और पुकार कर कहता है कि सावधान हो, देख, क्या करता है! परन्तु वह इस समय कुछ नहीं सुनता। उसको इस बातका विचार नहीं है कि चरित्रकी दृढता सदा सच्चे मार्ग पर जमे रहनेमें है। वह मित्रोंके साथ उस दिन थोड़ी शराब पी लेता है। यद्यपि वह इस विचारसे नहीं पीता कि उसको शराबसे प्रेम है या वह शराबकी आदत डालना चाहता है, सिर्फ़ यह खयाल करके पी लेता है कि मित्रोंमें इंकार करना ठीक नहीं है। दैवयोगसे दो चार बार ऐसा ही मौका पड़ जाता है और वह हर बार थोड़ी थोड़ी पी लेता है। परन्तु इसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। प्रत्येक बार विवेककी रोकटोक कम होती जाती है और धारे धीरे उसे नशेकी चाट पड़ती जाती है। अब तो वह कभी कभी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं भी खरीद कर थोड़ीसी पी लेता है। उसको स्वप्नमें भी इस बातका ख्याल नहीं होता कि मैं क्या कर रहा हूँ और इसका क्या भयंकर परिणाम होगा। धीरे धीरे उसको शराबकी आदत पड़ जाती है और अब उसके लिए उसका छोड़ना कठिन हो जाता है। इस पर भी वह कुछ परवा नहीं करता; वह समझता है कि मैं अपनी इच्छासे ही कभी कभी पी लेता हूँ। जब देखूँगा कि इसकी आदत ही पड़ गई, तब छोड़ दूँगा; परन्तु यह केवल उसका विचार ही है। उसके लिए शराब दिन दिन ज़रूरी होती जाती है और एक दिन वह आता है कि जब हम उसे पक्का शराबी देखते हैं। अब उसे स्वयं अपनी हालत पर शोक और पश्चात्ताप होता है। लज्जा, घृणा, अपमान और निर्धनताके कारण उसे अपने पिछले दिनोंकी याद आती है। परन्तु अब उसका जीवन बिलकुल नीरस और निराश हो गया है। यह उसके लिए आसान था कि वह शराबको कभी पीता ही नहीं, या पीता भी तो इस अवस्थाको पहुँचनेसे पहले ही उसका त्याग कर देता। परन्तु वर्तमान अवस्थामें भी चाहे वह कितनी ही गिरी हुई हो, कितनी ही बुरी हो, वह चाहे तो इसका त्याग कर सकता है और फिर एक बार पहलेके समान सुख और शांतिको प्राप्त कर सकता है। आप पूछेंगे कि इसका उपाय क्या है? उपाय यह है कि जब उसके मनमें शराब पीनेकी इच्छा हो, तत्काल उस इच्छाको रोक दे-एक मिनिटकी देर न करे। यदि ज़रा भी देर करेगा—ज़रा भी उस इच्छाको अपने मनमें स्थान देगा, तो फिर उसका निकलना कठिन हो जायगा। चिनगारीका पहले ही बुझा देना आसान है। जब घरमें आग लग जाती है तब उसका बुझाना कठिन हो जाता है। अतएव बुरे विचारको मनमें आते ही रोक दो। इसीमें सारी सफलता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ एक बात, और कह देनी ज़रूरी है कि कोई विचार केवल उस विचारको दूर करनेका ही विचार करनेसे दूर नहीं होता; उसके दूर करनेका सरल और निश्चित उपाय यह है कि मनको किसी और कार्यमें लगाया जाय अथवा मनमें उस विचारका कोई प्रतिकूल वा अन्य कोई उत्तम विचार भर दिया जाय। ऐसा करनेसे बुरा विचार स्वयमेव मनसे निकल जायगा और उत्तम विचार उसका स्थान ले लेगा। पहले पहल किसी विचारको निकालनेके लिए तबियत पर दबाव डालना होगा, परन्तु ज्यों ज्यों उसके लिए उद्योग किया जायगा त्यों त्यों उसमें कठिनाई कम और आसानी अधिक होती जायगी। और इसके विपरीत उत्तम विचारोंको मनमें स्थान देनेकी शक्ति बढ़ती जायगी। परिणाम यह होगा कि धीरे धीरे शराब पीने अथवा और किसी बुरे कामके करनेका विचार कम होता जायगा और यदि कभी ऐसा विचार आयगा भी, तो वह आसानीसे निकाल दिया जा सकेगा और एक दिन वह आयगा कि जब उस विचारका मनमें प्रवेश ही न होने पायगा। एक उदाहरण और भी दिया जाता है। मान लो कि एक आदमीका स्वभाव ज़रा चिड़चिड़ा है अर्थात् उसे जल्दी गुस्सा आजाता है। यदि कोई उसे कुछ कह देता है अथवा उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम कर देता है तो वह बिगड़ खड़ा होता है और नाराज भी होने लगता है। अब इस दशामें वह जितना अधिक बुरा मानेगा और जितना अधिक अपने रोषको ज़ाहिर करेगा उतना ही अधिक उसका क्रोध बढ़ता जायगा। ज़रा ज़रा सी बात पर उसे क्रोध आने लगेगा और उसके लिए क्रोधका त्याग करना दिन दिन कठिन होने लगेगा; यहाँ तक कि रोष, क्रोध, घृणा, शत्रुता और बदला लेनेकी इच्छा उसके स्वभाव हो जायँगे। प्रसन्नता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और प्रफुल्लता सदाके लिए बिदा ले जायगी और हर एकके साथ उसका चिड़चिड़ानेका व्यवहार हो जायगा। परन्तु यदि वह जिस समय क्रोध आवे उसी समय उसे दबा दे और अपने मनको किसी और विषयकी तरफ़ लगा दे तो उसे प्रथम तो क्रोध आ ही नहीं सकता और यदि आयगा भी, तो शीघ्र ठंडा पड़ जायगा। यदि फिर कभी क्रोध आयगा और वह उसे शांत करनेका प्रयत्न करेगा तो उसको पहलेसे ज्यादह आसानी होगी! इस तरह थोड़े दिनोंमें ही उसका क्रोध छूट जायगा। तब न कोई बात उसे भड़का सकेगी और न किसी भी बातसे उसे क्रोध आयगा। इसके विपरीत उसकी तबियतमें क्षमा, शांति, दया और प्रेम पैदा हो जायँगे जिनका आज वह विचार भी नहीं कर सकता।

इसी प्रकार उदाहरण पर उदाहरण लिये जाओ। एक एक आदत, एक एक स्वभावको देखो। हर जगह इसी उपायको उपयोगी पाओगे। दूसरोंकी बुराई करना, उनके अवगुण देखना, ईर्ष्या, द्वेष, निर्दयता, कायरता, और इनसे उलटी तमाम आदतें इसी तरह विचारोंसे पैदा होती हैं। इसी तरह हमारे मनमें राग, द्वेष पैदा होता है। इसी प्रकार हमारी तबियतमें हर्ष, विषाद, शोक, आनन्द या खेद पैदा होता है। ऐसे ही हम स्वयं अपने तथा दूसरोंके लिए आशा और प्रसन्नताके स्रोत हो सकते है और ऐसे ही उनके लिए निराशा और दुःखके कारण बन सकते हैं।

मनुष्यके जीवनमें इससे ज्यादह सच्ची और कोई बात नहीं है कि हम जैसे बननेका विचार करते हैं वैसे ही बन जाते हैं। यह बात बिलकुल सच है और इसकी सचाईमें तानिक भी सन्देह नहीं है कि आदमी जैसा विचार करता है, वैसा ही बन जाता है। उसका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरित्र आदतोंका समूह है। उसकी आदतें उसके कार्योंसे बनी हैं। और उसका प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक है, अर्थात् प्रत्येक कार्यके पूर्वमें उसके मनमें उस कार्यके करनेका विचार पैदा हुआ है। अतएव यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि हमारे विचारोंसे ही हमारा चरित्र बनता है। विचार ही मूल कारण हैं।

विचारोंसे ही हम अभीष्ट को प्राप्त कर सकते हैं और विचारोंसे ऊँचेसे ऊँचे पद पर पहुँच सकते हैं। केवल दो बातें ज़रूरी हैं। एक यह कि मनुष्यको अपना उद्देश और मनोरथ निश्चित कर लेना चाहिए। दूसरी यह कि सदा उनकी प्राप्तिके उद्योग करते रहना चाहिए। चाहे उसमें कितनी ही कठिनाईयाँ सहनी पड़ें और कितनी ही आपत्तियोंका सामना करना पड़े। स्मरण रक्खो कि स्थिर प्रकृति और दृढ चरित्र मनुष्य वही है जो अपने मनोरथकी सिद्धिमें भावी लाभके लिए वर्तमान सुखकी परवा नहीं करता। सदा उसको तलांजुलि देनेको तैयार रहता है। वह कठिनाईयाँ दूर करता हुआ और आपत्तियोंको सहता हुआ अपने उद्देशकी प्राप्तिमें लवलीन रहता है और एक दिन अवश्य सफलताको प्राप्त कर लेता है। उसकी मनोकामना पूरी होजाती है और वह इच्छातीत होजाता है। (क्रमशः)

दयाचन्द्र गोयलीय बी. ए.।

---

* श्रीयुत राल्फ वाल्डो ट्राईनके 'करैक्टर बिल्डिंग–थाट पावर' नामक ग्रन्थका स्वतंत्र अनुवाद।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

डाक्टर जैकोबीका व्याख्यान।

(राजकोटमें दिया हुआ।)

जैनधर्म पर एक व्याख्यान देनेके लिए मुझसे कहा गया है; यह एक ऐसा विषय है जिससे मेरा परिचय चिरकालिक अध्ययनसे और भारतवर्षकी अवस्थाके अनुभवसे हो गया है। हमने जैनधर्मकी स्थिति थोड़े ही कालसे समझी है; पहले विश्वास था कि यह बौद्धधर्मकी शाखा है, क्योंकि उस समय बुद्धदेवको पश्चिमी विद्वान् भली भाँति जान गये थे और चूँकि बौद्धधर्मको उसके अपने जन्मस्थान भारतवर्षके बाहर बहुतसी एशियाकी कौमोंने ग्रहण किया है। अतएव यह धर्म स्वभावतः समान मतोंका मूल समझा जाने लगा और जैनमत भी इन समान मतोंमेंसे एक मालूम होता था।

साधु-धर्म।

बौद्धमतकी तरह जैनमत भी असलमें और मुख्य करके साधु-धर्म है। अर्थात् यह मुख्यतः साधुओं और साध्वियोंके संघके लिए है और श्रावक दूसरी श्रेणीके समझे जाते हैं। अतएव यह मालूम होता था कि जैन और बौद्ध साधु अपने जीवनके बाहरी स्वभावमें बहुत कुछ समानता रखते हैं। इसके अतिरिक्त कोई ऐसी विशेषता न थी जो इस बातको पुष्ट करती कि इन दोनो मतोंका एक ही निकास था। बौद्ध और जैन प्रतिमाओंमें भी बड़ी समानता है, दोनों ध्यानस्थ अवस्थामें होती हैं और कुछ समय पहले बुद्धदेव और तीर्थंकरोंको अलग अलग पहचानना कठिन था। इन सब बातोंसे यही परिणाम निकाला गया कि जैनमत बौद्धधर्मका एक सम्प्रदाय है जो बौद्धधर्मसे प्राचीन कालमें ही जुदा हो गया। क्योंकि जैन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्तोंके विषयमें जो कुछ मालूम हुआ उससे असली बौद्धों और जैनोंके मतोंमें बौद्धोंके अत्यन्त दूर दूरके सम्प्रदायोंसे भी अधिक मौलिक भिन्नता मालूम हुई। इस ऊपरी सिद्धान्तके आधार पर अन्य विद्वानोंने नवीन सिद्धान्त बना लिये, जिनकी धृष्टता उतनी ही अधिक है जितनी जैनमतसम्बन्धी असली सामग्री कम है और इसी कमीको इस धृष्टताका कारण आसानीसे कहा जा सकता है। परन्तु गत शताब्दिके ६० वें और ८० वें वर्षके मध्यवर्ती कालमें कुछ परिवर्तन किया गया। उस समय डाक्टर बुहलरको जो गुजरातमें शिक्षा-विभागके निरीक्षक थे-जैनोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंके संग्रह करनेमें सफलता प्राप्त हुई। ये ग्रन्थ दक्खिन कालिजके पुस्तकालय और इंगलिस्तान, और शेष यूरुपके कुछ पुस्तकालयोंके अधिकारमें चले गये। मैं भी अपने मित्र डाक्टर बुंहलरकी सहायतासे मुख्य अंगों और उपांगोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त कर सका। इसी समय बौद्ध धर्मग्रन्थोंका अन्वेषण भी बड़े जोशसे हो रहा था और इस काममें बहुत उन्नति हो चुकी थी। इसी समय मुझे जैनधर्मका अध्ययन आरम्भ करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ; इस अध्ययनसे मैंने शीघ्र ही पुरानी कल्पनाको अस्वीकार किया और मुझे विश्वास होगया कि जैनमत बौद्धमतसे सर्वथा स्वतन्त्र है।

अन्तरस्थ साक्षी।

मुझे जैन धर्मग्रन्थोंसे बुद्धदेवके समसामयिकों, मगधके राजाओं, और उस समयके कुछ धार्मिक नेताओंके नाम जैनोंके चौवीसवें तीर्थंकर श्रीमहावीरके समकालीन मालूम हुए और बौद्धोंके धर्मग्रन्थोंमें महावीरका उल्लेख 'निगंथनातसुत' के नामसे मिला। 'नातसुत' श्रीमहावीरका नाम है, क्यों कि वे क्षत्रियोंकी 'नात' जातिके थे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और 'निगंथ' जैनोंका एक प्राचीन नाम है जिसका प्रयोग उनके धार्मिक ग्रन्थोंमें किया गया है। अतएव इसमें कुछ सन्देह न रहा कि महावीर बुद्धके समकालीन थे; इसके अतिरिक्त बौद्धोंने उस स्थानका नाम भी लिखा है जहाँ श्रीमहावीरको निर्वाण प्राप्त हुआ है। बौद्धधर्मसे जैनधर्मकी स्वतन्त्रता इस प्रकार सिद्ध करके हम एक कदम और आगे बढ़ सके। बौद्धोंने निगंथों अथवा जैनोंको बहुधा अपना प्रतिद्वन्दी (मुक़ाबलेका) सम्प्रदाय लिखा है; परन्तु उन्होंने इस बातका संकेत भी नहीं किया कि जैन-सम्प्रदाय एक नवीन–स्थापित सम्प्रदाय था। किन्तु जिस रीतिसे वे जैन–सम्प्रदायका उल्लेख करते हैं उससे यह मालूम होता है कि निगंथोंका यह सम्प्रदाय बुद्धदेवके समयमें चिरकालिक स्थिति प्राप्त कर चुका था अर्थात् दूसरे शब्दोंमें बहुतकरके यह मालूम होता है कि जैनधर्म बौद्धधर्मसे बहुत प्राचीन है। आगे चलकर हमको इस मतको पुष्ट करनेके सुबूत मिलेंगे।

बौद्ध–दर्शनके सिद्धान्त।

जब हम एक ओर तो बौद्धदर्शनके और दूसरी ओर जैनदर्शनके सिद्धान्तोंका ध्यानपूर्वक अध्ययन करते हैं, तो दोनोंमें इतनी अधिक भिन्नता मालूम होती है कि दोनोंका एकही निकास होनेका ख़याल सर्वथा जाता रहता है। बुद्धदेवने चीज़ोंकी नित्यताको अस्वीकार किया, उन्होंने सँलग्न उत्पत्ति मानी। सब नाशवान् है, कुछ भी नित्य नहीं, ये उनके अन्तिम वाक्य कहे जाते हैं। प्रत्येक मौजूद चीज़के नाशवान् होनेके विचारसे सब पदार्थोंके क्षणभंगुर होनेका बौद्ध सिद्धान्त बादमें निकल पड़ा। इस सिद्धान्तने भारतीय दर्शनमें घोर परिवर्तन कर दिया। इस सिद्धान्तका यह आशय है:–प्रत्येक पदार्थका अस्तित्व केवल एक क्षण रहता है और दूसरे क्षणमें उसके स्थानमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ठीक वैसा ही पदार्थ आ जाता है। जैसे कि हम वाईसकोपमें चीजोंको घूमते हुए देखते हैं। हम जिसे किसी वस्तुका अस्तित्व या विस्तार कहते हैं वह केवल श्रेणीबद्ध क्षणिक अस्तित्वोंका क्रम है। अब मैं इस आश्चर्यजनक सिद्धान्तको विना व्योरेवार कहे हुए ज़ियादा समझानेका प्रयत्न करूँगा।

जीव और पुद्गल।

यह तो स्पष्ट है कि बौद्धोंको हर चीज़की नित्यता अस्वीकार करनी पड़ी और वे इस मुख्य विचारको इसके न्याय-सिद्ध परिणामों तक लेजानेमें असावधान न रहे। अतः उन्होंने जीव और पुद्गलका भी नित्य अस्तित्व अस्वीकार किया। वे जीवकी नित्यता पर विश्वास लाना बौद्धमतके सिद्धान्तके अत्यंत विरुद्ध समझते हैं। परन्तु इन सब बातोंमें जैनोंका ज्ञान ठीक विरुद्ध है। उनके अनुसार जीव और पुद्गल दोनों नित्य हैं और स्थायी अस्तित्व रखते हैं। यह मत उनकी दर्शन-पद्धतिका आधार है और जैनपद्धतिके मौलिक सिद्धान्तोंका खयाल दिलानेके लिए मैं अब इसे अधिक व्योरेवार बयान करूँगा। जैनोंके अनुसार मौजूद चीज़ोंके संसार दो वर्गोंमें विभक्त हैं; जीव और पुद्गल। इनके अतिरिक्त तीन चीजें और हैं, आकाश, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय। परन्तु इन पर हम समय व्यय नहीं करेंगे, क्योंकि ये हमारी इस बातसे संबंध नहीं रखते। जीवोंकी संख्या अनंत है। जब तक उनको मोक्ष प्राप्त नहीं होता तब तक वे शरीर-धारण करते रहते हैं। और पुद्गल द्रव्य परमाणुओंसे बना है जो नित्य हैं। परन्तु उनकी पर्याय नित्य नहीं। पुद्गलकी पर्याय स्थितियोंके अनुसार बदलती रहती है। पुद्गल एक ऐसी वस्तु कही जा सकती है जो चाहे जो कुछ हो सकती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो कुछ हमें दिखता है वह बादर अवस्थाका पुद्गल है; परन्तु पुद्गल सूक्ष्म अवस्थामें भी बदल सकता है और उस समय हमको दृष्टिगोचर नहीं होता। अब वह बात जो जैनदर्शन सिद्ध करता है वस्तुओंकी स्थितिका—जैसी कि वे हमको जीव और पुद्गलका एक दूसरे पर असर पडनेसे मालूम होती हैं—कारण समझाना है और जैन-दर्शनने यह बात अत्यंत अनुकूलता और सम्पूर्णतापूर्वक कर दिखाई है। अब मैं कुछ और ब्योरेवार कहता हूँ। जैसा कि मैंने पहले कहा था जीव जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं करते, शरीर धारण करते रहते हैं। अतएव हमको मोक्ष गये हुए जीव जो संसारी जीवनसे निश्चय-रूपसे मुक्त हो गये हैं, और संसारी जीवोंमें, जो अभी बन्धनमें हैं, भेद दिखलाना है। संसारी जीव पवित्र नहीं होते किन्तु वे न्यूनाधिक अपवित्र होते हैं। जीव अपने कर्मोंसे अपवित्र हो जाता है।

कर्म।

सर्व भारतीय दार्शनिक इस बात पर सहमत हैं कि हरएक काम जो हम करते हैं हमारे जीवों पर असर डालता है, उन पर कुछ चित्र बना देता है और यह चित्र उस समय तक रहता है जब तक वह बे-असर नहीं हो जाता। यह चित्र कर्म कहलाता है और यह उस व्यक्तिके जो अपने कर्मके कारण जीवनकी भिन्न भिन्न स्थितियोंको ग्रहण करता है, सुख या दुःख भोगनेसे बेअसर हो जाता है। अब जैनदर्शनमें केवल जीव और पुद्गल ही माने गये हैं, अतः यह अनु-मान होता है कि कर्म अवश्य पौद्गलिक है; वास्तवमें जैन इस बातको ठीक ऐसा ही मानते हैं। कर्म पुद्गलकाय है। कर्मके विषयमें उनके विचार ये हैं:—किसी व्यक्तिके कर्मसे उसके जीवमें पुद्गलके अणु सूक्ष्मरूपमें जाने लगते हैं; सूक्ष्म पुद्गलोंका जीवमें आस्रव होने लगता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है और हम कह सकते हैं कि जीव कर्मपुद्गलोंसे वैसे ही भर जाता है जैसे रेतसे थैला। इस प्रकार कर्मके पुद्गल जीवके प्रदेशोंसे मिल जाते हैं और (कषायके कारण, जो बंधनका काम करती है) जीवसे ऐसे मिल जाते हैं जैसे दूध पानीमें; और इस प्रकार जीव अपवित्र हो जाता है। कर्म जीवात्माके स्वाभाविक गुणोंका आवरण कर लेते हैं; ये गुण सम्पूर्ण ज्ञान और सुख हैं। कर्म इन गुणोंके प्रगट होनेमें बाधा डालते हैं। भिन्न भिन्न प्रकारके कर्म भिन्न भिन्न गुणोंके प्रकट होनेमें बाधक हैं। क्योंकि कर्म एक प्रकारके नहीं बरन् आठ तरहके होते हैं। जब कार्मिक पुद्गलोंका जीवमें आस्रव होता है तब वे आठ प्रकारके कर्मों अर्थात् कर्मकी आठ प्रकृतियोंमें परिणत हो जाते हैं, जिस तरहसे हमारा खाया हुआ भोजन शरीरमें जाकर भिन्न भिन्न प्रकारके रसोंमें परिवर्तित हो जाता है। एक प्रकारका कर्म जीवकी ज्ञानकी स्वाभाविक शक्तिका आवरण करता है, दूसरे प्रकारका कर्म अंतरायका कारण होता है। एक गोत्रका बंधन करनेवाला होता है और दूसरा किसी भवकी आयुको स्थिर करता है और इसी तरहसे दूसरे कर्मोंको भी समझना चाहिए। हर प्रकारका कर्म कुछ काल तक अप्रकट रह सकता है; परन्तु अंतमें उसका असर अवश्य होता है और वह जीवकी स्थितिको अपने स्वभावके अनुसार कर देता है और असर पैदा करनेके बाद कर्मकी जीवसे निर्जरा हो जाती है।

निर्जरा।

निर्जरासे जीव सब कर्मोंसे रहित होकर अपनी स्वाभाविक मुक्त अवस्थाको प्राप्त कर सकता है; यदि नवीन कर्मोंका निरंतर आस्रव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न हो। क्योंकि इससे संसारी जीवनमें आत्माका बन्धन रहा आता है। अतएव मोक्ष पानेके लिए कर्मोंके आस्त्रवका बंद होना भी आवश्यकीय है। इसको संवर अर्थात् जीवमें कर्मोंके आनेके द्वारका बंद होना कहते हैं, अतएव संवर और निर्जरा अर्थात् नवीन कर्मोंका रुकना और एकत्रित कर्मोंका झड़ जाना धर्मसे सम्बन्ध रखते हैं। सदाचार तपस्या और ध्यान इन बातोंकी प्राप्तिके लिए मुख्य कारण हैं। तपस्या, मुख्य करके उपवास, कर्मोंकी निर्जरा करनेवाले समझे जाते हैं। यदि उनकी निर्जरा न हो तो वे उस व्यक्ति पर अपना बुरा परिणाम प्रकट करेंगे। जब अंतमें आत्मा सब कर्मोंसे रहित होकर पवित्र स्वरूप धारण कर लेता है तब वह अपने कर्मोंके बोझसे इस संसारमें दबा नहीं रहता; किन्तु वह पुद्गलसे-जो कि अपने दबावसे आत्माको नीचे ही रखता है,—रहित हो कर लोकके ऊपर चला जाता है जहाँ वह सदैव मुक्त अवस्थामें रहता है; न तो उस पर संसारी पदार्थ कुछ असर डाल सकते हैं और न वह उन पर कुछ असर डालता है न उनकी पर्वा करता है। ये मुक्त आत्मा अर्थात् सिद्ध हैं और उन्हींमें गत तीर्थंकरोंके आत्मा हैं। तीर्थंकरों-को जैनी परमात्मा मानते हैं। क्योंकि वे मुक्त आत्मायें हैं जिनका धार्मिक संसारी जीवन पुण्यात्माओंके लिए आदर्श होना चाहिए। परन्तु जैन इस बातको स्पष्ट रूपसे अस्वीकार करते हैं कि वे परमात्मा संसारी कामों पर कोई सीधा असर रखते हैं। वे ईश्वरको संसारका कर्ताधर्ता माननेके सर्वथा विरुद्ध हैं।

मैंने कर्मसिद्धांतका (दिग्दर्शन मात्र) वर्णन किया है। क्योंकि यह जैनोंकी दार्शनिक और धार्मिक पद्धतिका मुख्य आधार है। इस सिद्धान्त पर दृष्टिपात करनेसे उनके चारित्रके बहुतसे नियमोंको समझना सुगम होगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनोंका चारित्रशास्त्र।

मुख्य मुख्य चारित्रक नियमोंको प्राचीन कालमें ही सब हिन्दुओंने मान लिया था। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन प्रथम चार व्रतों पर सहमत हैं; ये व्रत अहिंसा, अचौर्य, सत्य और ब्रह्मचर्य हैं। ऊपरके तीनों संप्रदायोंमें एक पाँचवाँ व्रत है, परन्तु वह भिन्न भिन्न मतोंमें भिन्न है। वे प्रथम चार व्रतोंके विषयमें ही नहीं, किन्तु अहिंसाको प्रथम स्थान देनेमें भी सहमत है। किसीको इसमें सन्देह नहीं है कि किसी मनुष्यका घात करना, उसके माल छीन लेने अथवा उसको झूठ बोलकर धोखा देनेकी अपेक्षा कहीं बड़ा पाप है। परन्तु 'अहिंसा' की सीमा केवल मनुष्यजाति तक ही नहीं थी; इसका विस्तार जीवमात्र पर था। बौद्ध और जैन दोनों ही किसी जीवको मारना पाप समझते हैं, परन्तु केवल जैन ही 'अहिंसा' को उसके विस्तृत अर्थमें 'परमो धर्मः' मानते हैं, और इसके परिणामोंको अंत तक ले गये हैं। और चूँकि वे वनस्पतिको भी जीवसहित मानते हैं, अतएव साधारण जीवन व्यतीत करनेवाले किसी पुरुषके अहिंसाका पूर्णतया पालना असंभव ही है; परन्तु साधुओं पर इस व्रतका पूर्ण बन्धन है और चारित्रके नियमोंमें से अधिकांश नियम अहिंसासे संबन्ध रखते हैं। गृहस्थ कमसे कम त्रस कायके जीवोंकी हिंसासे बचते हैं अतएव वे पक्के शाकाहारी, होते हैं, यह तो तुम जानते ही हो। अहिंसा जैनोंका परम कर्तव्य है; उनके चारित्रका मूलाधार है।

जैनोंका श्रद्धान।

मैं कह चुका हूँ कि जैन वनस्पतिको भी जीवसहित, जीवोंके रहनेका स्थान अथवा पिंड समझते हैं। इस बातमें वे अन्य हिन्दू दार्शनिकोंसे सहमत हैं। परन्तु वे जीव-संसारका विस्तार त्रस और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पति कायके जीवोंसे भी आगे बढ़ा देते हैं। इस बातमें उनके विचार बड़े अनौखे हैं और कमसे कम भारतवर्षके कोई दार्शनिक उनसे सहमत नहीं। जैन पृथ्वी, अप्, वायु और तेज कायको जीव-सहित अथवा जीवोंके पिंड समझते हैं, जिनको प्रथम 'काय' और जीव कह सकते हैं। जब इन प्रथम काय, पृथ्वीकाय अप्-काय इत्यादिमेंसे जीव निकल जाते हैं, केवल उसी समय वे जीव-रहित पुद्गल होते हैं। तदनुसार शीत जलमें जीव समझे जाते हैं अतः उसे साधु काममें नही लाते। इस प्रकार जैनोंकी दृष्टिसे हमको जीव-रहित पुद्गल सीमाबद्ध समझने चाहिए। क्योंकि अधिकांश पदार्थ कमसे कम कुछ समयके लिए जीवसहित गिने जा सकते हैं। परंतु यहीं पर अंत नहीं है। अभी एक प्रकारके जीव और हैं जो सबसे नीची श्रेणीके हैं और हमारे दृष्टिगोचर नहीं हैं। ये जीव निगोद कहलाते हैं। इस शब्दका अर्थ समझानेके लिए मैं बतलाता हूँ कि जैनोंके अनुसार वनस्पतिकाय दृष्टिगोचर और अदृष्टिगोचर दो प्रकारका होता है; निगोद दूसरी प्रकारका है। कुछ वनस्पतियोंमें तो एक ही जीव होता है और कुछमें, जिनकी संख्या अधिक है, बहुतसे जीव होते हैं जो मिलकर एक बस्ती या भंडार होते हैं। निगोद ऐसी ही वनस्पति है। निगोदमें छोटेसे छोटे गोले होते हैं जिनमें असंख्य कोठरियाँ होती हैं और प्रत्येक कोठरीमें अनंत जीव होते हैं जिनके जीवनके सब काम एक साथ होते हैं। इन गोलोंसे सब आकाश अक्षर प्रति अक्षर ठसाठस भरा है। निगोदमेंसे कुछ जीव कभी कभी निकल जाते हैं और मोक्ष गये हुए आत्माओंके मुक्त होनेसे जो स्थान खाली हो जाते हैं उनके भरनेके लिए आत्माओंकी श्रेणीमें चढ़ जाते हैं। क्योंकि जीवोंकी एक श्रेणी नीचेसे लेकर त्रस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य और देवों तक है; अपने पापपुण्यके अनुसार भिन्न भिन्न जन्मोंमें जीव इस श्रेणी पर उतरा और चढ़ा करते हैं। परन्तु केवल मनुष्यशरीरसे ही मुक्ति हो सकती है। मैंने जैनोंके जीवसंबंधी सिद्धान्तका केवल दिग्दर्शन कराया है, जो एक अत्यन्त आवश्यकीय भाग है।

जैनसाहित्य।

मैं अधिक विस्तारके साथ न कहूँगा। अपने व्याख्यानके पहले भागमें जैनमतके अत्यन्त आवश्यकीय सिद्धान्तोंको ही मैंने वर्णन करनेका प्रयत्न किया है। इन सिद्धान्तोंका विस्तारपूर्वक वर्णन मौजूद है और उनकी व्याख्या अत्यन्त विस्तृत जैनसाहित्यके ग्रन्थों और टीकाओंमें की गई है। जैन साहित्यका नाम लेकर मैं इसे अपने व्याख्यानका अन्तिम विषय बनाता हूँ। मैं जैनियोंके पवित्र साहित्य अर्थात् श्वेतांबरियोंके सिद्धान्तों या सूत्रग्रन्थोंके विषयमें कुछ न कहूँगा। मैं केवल उन पुस्तकोंके विषयमें कहूँगा जो बादके लेखकोंने रची हैं। प्राकृत और संस्कृतके पवित्र ग्रंथोंकी केवल टीकाओंसे बना हुआ साहित्य पवित्र ग्रंथोंसे भी—जिनकी संख्या पाँच लाख कही जाती है—बड़ा है। जैनमतके सिद्धान्तोंको बतलानेवाले ग्रन्थोंके अतिरिक्त बहुतसे प्राकृत और संस्कृत दोनोंके काव्य मौजूद हैं, जिनमें मुनियों, मुख्य करके तीर्थंकरोंकी जीवनियाँ लिखी गई हैं। इन 'चरित्रों'का कुछ अंश ही प्रकाशित हुआ है और अधिकांश केवल हस्तलिखित ही मिलता है। इसमेंसे कुछ काव्यके असली ढंग पर लिखे हैं। इनमें केवल वे ही अलंकार हैं जो असली संस्कृतमें मिलते हैं। अन्य-चरित्र कथाके अधिक सरल ढंग पर लिखे हैं; उनमें प्रायः कहानियाँ और अन्य कथायें—जिनको जैन भलेप्रकार कहना जानते थे—लिखी हैं। क्योंकि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कदाचित् प्राचीन बौद्धोंके अतिरिक्त भारतीय लेखकोंकी ऐसी कोई भी श्रेणी (समूह) नहीं है जो जैनोंके समान कहानियाँ कहनेके और मुख्यकर ऐसी कहानियाँ-जिनसे धार्मिक शिक्षा निकलती हो-कहनेके शौकीन हों। पंचतंत्रके लघुरूपोंके लिए जो सबसे अधिक फैले हैं, हम जैनोंके ही ऋणी हैं। परन्तु भारतवर्षके प्राचीन साहित्यके लिए एक दूसरी बातमें भी जैनसाहित्य बड़े कामका है। प्राचीन पुस्तकोंके लेखोंसे हमको मालूम होता है कि ईसाकी प्रारंभिक शताब्दियोंसे दसवीं शताब्दि तक और उसके बाद तक शिक्षित लोगोंके लिए, जो उत्तम संस्कृतके ग्रन्थोंको नहीं पढ़ सकते थे, एक बड़ा प्राकृत साहित्य मौजूद था। परन्तु इस बड़े साहित्यमेंसे उत्तम संस्कृत साहित्यके महाकाव्योंके समान अति उत्तम ढंग पर लिखे हुए थोड़े ही ग्रंथ बचे हैं; शेष सब विस्मरणमें पड़ गये और सदैवके लिए लुप्त हो गये। हमको यह भी न मालूम होता कि ये किस तरहके ग्रन्थ थे, यदि जैनोंने अपने कुछ प्राकृत ग्रन्थ, कवितायें और कथायें न बचा ली होतीं। मैं पहले 'पउमचरिय' (पद्मचरित) का वर्णन करता हूँ जो हमारे अधिकारमें सबसे प्राचीन प्राकृत काव्य है; क्योंकि यह ईस्वी सन्के आदिमें ही रचा हुआ कहा जाता है। यह अवच्छिन्न वीररसमयी शैलीमें लिखा है और प्राकृतके बड़े वीररसमय साहित्यका—जो अब सर्वथा लुप्त हो गया है,—शेषांश समझा जा सकता है। लेखकने स्पष्ट रूपसे उस समयके मौजूद आदर्श ग्रंथोंका अनुकरण किया है; वह वीररसमय प्रथम ग्रंथ लिखनेवाला कदापि नहीं है। वीररसमय साहित्यके अतिरिक्त और कदाचित् उसके कुछ काल पश्चात् गद्य और पद्य दोनोंमें कथाके ग्रंथोंका बड़ा साहित्य बन गया। यह हमको अलंकारके लेखकोंके फुटकर उल्लेखोंसे मालूम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है। परन्तु वे ग्रंथ—जिनका ध्यान उनको उल्लेख करनेके समय था—बहुत कालसे खो गये हैं और हमको यह भी न मालूम होता कि वे कैसे थे, यदि जैन लेखकों द्वारा लिखे हुए वैसे ही कुछ प्राकृत ग्रंथ इस समय मौजूद न होते। इन ग्रन्थोंमेंसे सबसे प्राचीन और महत्त्व-पूर्ण हरिभद्रकृत समरादित्यकथा है, जिसको हेमचंद्रने सकल कथाका आदर्श लिखा है। यह ग्रन्थ नवीं शताब्दिमें, एक हजारसे भी अधिक वर्ष हुए, लिखा गया था। इसमें प्रेम-कथायें, स्थल और जल पर साहसके कृत्य, दरबारोंके झगडे, लड़ाइयाँ इत्यादि भारतीय जीवनके मध्यकालके नाना प्राकरके दृश्य दिये हैं। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि इन्हीं विषयोंकी सामग्रीसे प्राकृतकी आख्यायि-कायें,—जो एक समय शिक्षित समाजको आनंददायक थीं—लिखी गई थीं। इसका क्या कारण है कि प्राकृतमें लिखे हुए कथाओंके ग्रन्थ—जो एक समय बहुलतासे थे—लुप्त हो गये हैं ? यह स्पष्ट है कि प्राकृतसाहित्यका ज्ञान—जो किसी समय लोगोंकी भाषाका सुशील रूप था और इस लिए सुगमतासे उनकी समझमें आजाता था—समयके व्यतीत होनेसे और सर्वप्रिय भाषाके बदलनेसे, सर्वप्रिय भाषासे ऐसा भिन्न हो गया कि प्राचीन भाषामें लिखे हुए ग्रन्थोंके समझनेके लिए विधिपूर्वक अध्ययनकी जरूरत हो गई। इस प्रकार सर्वसाधारणकी दृष्टिमें जो विद्वत्ताकी भाषा पर प्राचीन भाषाकी उच्च-मता थी वह जाती रही और प्राकृत ग्रंथोंके पढ़नेवाले सिवाय जैन विद्वानोंके, जो प्राकृतका आदर संस्कृतके बराबर करते थे, कहीं न मिले। और इस तरह यह हुआ कि अधिक सर्वप्रिय प्राकृत भाषाकी झलकोंके लिए हम जैनोंके ऋणी हैं।

परन्तु यदि मैं इस विषयको अधिक व्योरेवार कहूँ तो मेरे श्रोता-ओंके धैर्य पर अधिक भार पड़ेगा। मैं ख़याल करता हूँ कि मैं यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिखानेके लिए काफी कह चुका हूँ कि जैनमतमें ज्ञानका बड़ा भंडार है और यह उनके अन्वेषणके योग्य है जो प्राचीन भारतकी दार्शनिक तथा धार्मिक उन्नति और इतिहासके प्रेमी हैं।

अनुवादक—
'संशोधक'

सांख्यदर्शन।

(गतांककी पूर्ति)

वेद।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि सांख्यप्रवचनके कर्त्ता ईश्वरको नहीं मानते हैं, परन्तु वेदको मानते हैं। मालूम होता है कि पृथिवीमें शायद ही कोई दर्शन या शास्त्र होगा जो धर्मपुस्तकका तो प्रामाण्य स्वीकार करता हो;परन्तु धर्मपुस्तकके विषयीभूत और प्रणेता जगदीश्वरके अस्तित्वको स्वीकार न करता हो। यह 'वेदभक्ति' भारतवर्षकी बड़ी ही विस्मयकारिणी चीज़ है। इस विषयको हम कुछ विस्तारके साथ लिखना चाहते हैं।

मनुजी कहते हैं—"वेदको छोड़कर और सब ग्रन्थ मिथ्या हैं। भूत भविष्यत् वर्तमान, शब्द स्पर्श रूप गन्ध, चतुर्वर्ण, तीन लोक, चतुराश्रम आदि सब ही वेदसे प्रकाश हुए हैं। वेद मनुष्योंका परम साधन है। जो वेदज्ञ है, वही सेनापतित्व, राज्यशासकत्व और सर्वलोकाधिपत्यके योग्य है। जो वेदज्ञ है वह चाहे जिस आश्रममें रहे सदा ब्रह्ममें लीन होने योग्य है। धर्मजिज्ञासुओंके लिए वेद ही परम प्रमाण है। जो ब्राह्मण तीन लोककी हत्या करनेवाला और जहाँ तहाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खानेवाला है, यदि ऋग्वेद याद हो, तो उसे कोई पाप नहीं लग सकता!" महाभारतके शान्तिपर्वमें कहा है-"वेद शब्दसे सर्वभूतोंके रूप-नाम कर्मादिकी उत्पत्ति हुई है।" ऋक्संहिता और तैत्तिरीयसंहिताके मंगलाचरणमें सायनाचार्य और माधवाचार्यने लिखा है—"वेदसे अखिल जगत्का निर्माण हुआ है।"

इस तरह सर्वत्र ही वेदका माहात्म्य बतलाया है। किसी देशमें किसी भी धर्मग्रन्थकी ऐसी महिमा नहीं गाई गई।

अब प्रश्न यह है कि जो वेद इस तरह सबका पूर्वगामी और उत्पत्तिका मूल है, वह आया कहाँसे? इस विषयमें जुदा जुदा लोगोंके जुदा जुदा मत हैं। कोई कोई कहते हैं कि वेदका कर्त्ता कोई भी नहीं है—यह ग्रन्थ किसीका भी बनाया हुआ नहीं है; यह नित्य और अपौरुषेय है। दूसरे कहते हैं कि यह ईश्वरप्रणीत है, इस लिए सृष्ट और पौरुषेय है। हिन्दूशास्त्रोंकी यह कैसी आश्चर्यकारिणी विचित्रता है कि वेदोंको तो वे सब ही मानते हैं, परन्तु वेदोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें उनमेंसे किसी दो ग्रन्थोंकी भी एकता नहीं दिखलाई देती।

ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें लिखा है कि वेदपुरुष यज्ञसे उत्पन्न हुआ। अथर्ववेदमें एक जगह कहा है कि ऋक्-यजुः-साम स्तम्भसे उत्पन्न हुए हैं। दूसरी जगह कहा है कि वेदोंका जन्म इन्द्रसे हुआ है। तीसरी जगह कहा है कि ऋग्वेद कालसे उत्पन्न हुआ है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा है कि अग्निसे ऋक्, वायुसे यजुष्, और सूर्यसे सामवेदकी उत्पत्ति हुई है। इसी ग्रन्थमें अन्यत्र लिखा है कि प्रजापतिने वेदसहित जलमें प्रवेश किया। जलसे अण्डा और अण्डेसे पहले तीन वेद उत्पन्न हुए। एक जगह और लिखा है कि वेद महाभूत (ब्रह्मा) का निश्वास है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कहा है कि वेद प्रजापतिके स्मश्रु हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विष्णुपुराणमें कहा है कि वेद ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुए। महाभारतके भीष्मपर्वमें है कि सरस्वती और वेद विष्णुने मनसे सृजन किये। इत्यादि।

देखा जाता है कि इन सब ग्रन्थोंमें वेदोंका सृष्टत्व और पौरुषेयत्व प्रायः सर्वत्र ही स्वीकृत हुआ है—अपौरुषेयत्व कदाचित् हीं कहीं बतलाया गया है। परन्तु पीछेके प्रायः सब ही टीकाकार और दार्शनिक विद्वान् अपौरुषेयत्ववादी हैं। उन लोगोंके मत ये हैं:—

सायनाचार्यने ऋग्वेदकी टीकामें कहा है कि "वेद अपौरुषेय है। क्योंकि उसे किसी मनुष्यने नहीं बनाया।" माधवाचार्य तैत्तिरीय यजुर्वेदकी टीकामें कहते हैं कि "जिस तरह काल आकाशादि नित्य हैं उसी तरह वेद भी नित्य है।" ब्रह्माको उन्होंने वेदवक्ता स्वीकार किया है। मीमांसक कहते हैं कि "वेद नित्य ओर अपौरुषेय है। शब्द नित्य है इस लिए वेद भी नित्य है।" शंकराचार्य भी इसी मतको मानते हैं। नैयायिक इसका प्रतिवाद करते हैं और कहते हैं— "मन्त्र और आयुर्वेदके समान, ज्ञानी व्यक्तिके वचन प्रामाण्य होते हैं, इसी लिए वेदोंकी भी प्रमाणता माननी चाहिए।" वैशेषिकोंका मत है कि वेद ईश्वरप्रणीत है। कुसुमांजलि-कर्त्ता उदयनाचार्यका भी यही मत है।

इन सब शास्त्रोंकी आलोचना करनेसे जान पड़ता है कि कोई वेदको नित्य और अपौरुषेय कहते हैं और कोई सृष्ट तथा ईश्वरप्रणीत बतलाते हैं। इन दोको छोड़कर और तीसरा सिद्धान्त नहीं हो सकता। परन्तु सांख्यप्रवचनकारका मत सबसे निराला है। मुरारेस्तृतीयः पन्थः। वे पहले कहते हैं कि वेद कदापि नित्य नहीं हो सकता। स्वयं वेदमें ही उसके कार्यत्वका प्रमाण मौजूद है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यथा–"स तपोऽतप्यत तस्मात् तपस्तेपाना त्रयो वेदा अजायन्त।" जब वेद ही कहता है कि इस तरह वेदका जन्म हुआ है, तब वेद कदापि नित्य और अपौरुषेय नहीं हो सकता। और जो अपौरुषेय नहीं है वह अवश्य ही पौरुषेय होगा। परन्तु सांख्यकारके मतसे वेद न अपौरुषेय है और न पौरुषेय ही है! पुरुष अर्थात् ईश्वर नहीं है–वह सिद्ध नहीं होता, इस लिए वह पौरुषेय नहीं है। सांख्यकार और भी कहते हैं कि वेदके रचनेके योग्य जो पुरुष है वह मुक्त नहीं हो सकता; बद्ध होगा। जो मुक्त है वह प्रवृत्तिके अभावमें वेद सृजन नहीं कर सकता और जो बद्ध है वह सर्वज्ञ नहीं–असर्वज्ञ होगा। इस लिए वेद बनानेमें समर्थ नहीं हो सकता।

तब, पौरुषेय भी नहीं है और अपौरुषेय भी नहीं है, भला यह कहीं हो सकता है? सांख्यकार कहते हैं–हाँ, हो सकता है–यथा अंकुरादिः (५,८४)। जो लोग हिन्दूदर्शनशास्त्रोंका नाम सुनते ही विश्वास कर लेते हैं कि उनमें सर्वत्र ही आश्चर्यजनक बुद्धिका कौशल है, उनके भ्रमनिवारणके लिए इस बातका विशेष उल्लेख किया गया। सांख्यकारकी बुद्धिकी तीक्ष्णता भी विचित्र है और भ्रान्ति भी विचित्र है। हमारा यह विश्वास नहीं है कि सांख्यकार इस रहस्यजनक भ्रान्तिके गढ़ेमें असावधानीसे गिर पड़े हैं। हमारी समझमें सांख्यकारका हृदय वेदको नहीं मानता था, परन्तु उस समयके समाजमें ब्राह्मण एवं दार्शनिक कोई भी साहस करके वेदकी अवज्ञा नहीं कर सकता था। इस लिए उन्हें मौखिक वेदभक्ति प्रकाश करनी पड़ी है। और वेदोंको मानना पड़ा है इस लिए, जहाँ जहाँ आवश्यकता हुई है वहाँ वहाँ प्रतिवादियोंको निरस्त करनेके लिए उन्होंने वेदकी दुहाई दी है। किन्तु यह निश्चित जान पड़ता है कि वे वेदोंको अन्तरंगसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं मानते थे। वेद पौरुषेय नहीं है और अपौरुषेय भी नहीं है, यह वचन केवल व्यंगमात्र है। इस बातके कहनेमें सूत्रकारका यह अभिप्राय जान पड़ता है कि–"देखो, यदि तुम वेदको सर्वज्ञान-युक्त कहना चाहते हो, तो वेद या तो पौरुषेय होगा या अपौरुषेय। इनमेंसे इस बातका प्रमाण तो वेदमें ही मौजूद है कि वेद अपौरुषेय नहीं है। तब यदि यह पौरुषेय होगा, तो यह भी कहना होगा कि यह मनुष्यकृत है। क्योंकि यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि सर्वज्ञपुरुष कोई नहीं है।"

जब वेद पौरुषेय नहीं है और अपौरुषेय भी नहीं है, तब वेद माननीय कैसे हो सकता है? सांख्यकारने इस प्रश्नका उत्तर देना आवश्यक समझा था। यदि आजकलकी बात देखी जाय, तो भारत-वर्षमें इससे अधिक गुरुतर प्रश्न और कोई भी नहीं है। एक बार और भी यह प्रश्न उठा था। जिस समय धर्मशास्त्रोंके अत्याचारसे पीड़ित होकर भारतवर्ष त्राहि त्राहि करके पुकार रहा था, तब शाक्यसिंह बुद्धदेवने कहा था–"तुम वेदको क्यों मानते हो? वेदको मत मानो।" यह सुनकर वेदवित् वेदभक्त दार्शनिक मण्डलीने इस प्रश्नका उत्तर दिया था। जैमिनि, वादरायण, गौतम, कणाद, कपिल, जिनकी जैसी धारणा थी उन्होंने वैसा ही उत्तर दिया था। अतएव प्राचीन दर्शनशास्त्रोंमें उक्त प्रश्नका उत्तर रहनेसे दो बातें जानी जाती हैं। एक तो यह कि आजकलकी अँगरेजी शिक्षाके दोषसे ही लोग वेदोंकी अलङ्घनीयताके विषयमें सन्देह करने लगे हों, सो बात नहीं है। यह सन्देह बहुत पुराने समयसे चला आ रहा है। प्राचीन दर्शनिकोंके बाद शंकराचार्य, माधवाचार्य, सायनाचार्य आदि नवीन दार्शनिक भी इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए चिन्तित हुए थे। दूसरी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह कि इस प्रश्नको पहले पहल बौद्धोंने उठाया था और प्राचीन दार्शनिकोंने पहलेपहल उसका उत्तर दिया था। अतएव बौद्ध धर्म और दर्शनशास्त्रोंकी उत्पत्ति समकालीन समझी जा सकती है।

"वेदको हम क्यों मानें ?' इस प्रश्नकी विचारभूमिमें मीमांसक जैमिनीको महारथी और नैयायिक गौतमको उसका प्रतिद्वन्द्वी समझना चाहिए। ऐसा नहीं है कि नैयायिकोंको वेद मान्य नहीं है। नहीं वे वेदको मानते हैं, परन्तु मीमांसक जिन जिन कारणोंसे वेदको मानते हैं, नैयायिक उनको अग्राह्य करते हैं। मीमांसक कहते हैं कि वेद नित्य और अपौरुषेय है। नैयायिक कहते हैं कि वेद आप्तवाक्य मात्र है। नैयायिकोंने जिन युक्तियोंसे मीमांसकमत खण्डन किया है उनका सार मर्म यह है:—

मीमांसक कहते हैं कि सम्प्रदायाविच्छेदसे वेदकर्त्ता अस्मर्यमान है। सब बातें लोकपरम्परासे चली आ रही हैं, किन्तु यह किसीको भी स्मरण नहीं है कि वेदको किसने बनाया। इस पर नैयायिक कहते हैं कि प्रलय कालमें सम्प्रदायविच्छेद हो गया था। इस समय जो वेदका प्रणयन स्मरण नहीं है, सो इससे कुछ यह प्रमाणित नहीं होता है कि प्रलयके पहले वेद प्रणीत नहीं हुआ था। और यह भी तुम प्रमाण नहीं कर सकोगे कि वेदका कर्त्ता कभी किसीको स्मृत ही न था। वे और भी कहते हैं कि वेदवाक्य कालिदासादिके वाक्योंके समान ही वाक्य हैं। अतएव वेदवाक्य भी पौरुषेय वाक्य हैं। वाक्यत्व हेतुसे, मन्वादि वाक्योंके समान, वेदवाक्योंको भी पौरुषेय कहना होगा। मीमांसक कहते हैं कि जो वेदाध्ययन करता है उसके पहले उसके गुरुने अध्ययन किया था, उसके पहले उसके गुरुने, और उसके पहले उसके गुरुने; इस प्रकार जहाँ अनन्तपरम्परा है वहाँ वेद अनादि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। नैयायिक कहते हैं कि महाभारतादिके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार गुरुपरम्परा बतलाई जा सकती है, और वे भी अनादि सिद्ध किये जा सकते हैं। यदि कहो कि महाभारतके कर्त्ता जो व्यास हैं वे स्मर्यमान हैं तो वेदके सम्बन्धमें, भी कहा जा सकता है कि—"ऋच सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत।" इस तरह पुरुष-सूक्तमें वेदकर्त्ता भी निर्दिष्ट है। मीमांसक कहते हैं कि शब्द नित्य है इस लिए वेद भी नित्य है, परंतु शब्द नित्य नहीं है। क्योंकि शब्द सामान्यत्ववशतः घटवत् अस्मदादिके बाह्येन्द्रियग्राह्य है। मीमांसक उत्तर देते हैं कि गकारादि शब्द सुनते ही हमको प्रत्यभिज्ञान होता है कि यह गकार है; अतएव शब्द नित्य है। नैयायिक कहते हैं कि वह प्रत्य-भिज्ञान सामान्य विषयत्ववशतः होता है; जिस तरह केश कटकर फिर उग आते हैं। मीमांसक और भी कहा कहते हैं कि वेद अपौरुषेय है, इसका एक कारण यह है कि परमेश्वर अशरीरी है—उसके तालु आदि वर्णोच्चारण स्थान नहीं हैं। नैयायिक उत्तर देते है कि परमेश्वर स्वभावतः अशरीरी है, तो भी भक्तानुग्रहके अर्थ उसका शरीरग्रहण, असंभव नहीं है।

मीमांसकोंने इन सब बातोंका उत्तर दिया है, परन्तु विस्तारभयसे वह छोड़ दिया जाता है। गरज यह कि "वेदको हम क्यों मानें?" इस तर्कके प्राचीन दर्शनशास्त्रोंसे केवल तीन उत्तर प्राप्त होते हैं:—

१ वेद नित्य और अपौरुषेय है, इस लिए वह मान्य है। किन्तु यह बात वेद हीमें मौजूद है कि वह अपौरुषेय नहीं है। यथा—"ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि।

२. वेद ईश्वरप्रणीत है, इस लिए वह मान्य है। प्रतिवादी कहेंगे कि वेद ईश्वरप्रणीत है, इसका कोई विशिष्ट प्रमाण नहीं है। वेद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में लिखा है कि वेद ईश्वरसंभूत है। किन्तु जब वे वेदको मानते ही नहीं हैं तब उसकी बात क्यों मानने चले? इस विषयको लेकर जो वादानुवाद हो सकता है, उसका पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं। उसको सविस्तर लिखनेकी आवश्यकता भी नहीं है। जो ईश्वरको ही नहीं मानते, वे वेदको ईश्वरप्रणीत कहकर स्वीकार नहीं कर सकते।

३. वेदकी निज शक्तिकी अभिव्यक्तिके द्वारा ही वेदकी प्रमाणता सिद्ध होती है। सांख्यप्रवचनकारने यही उत्तर दिया है। इस सम्बन्धमें केवल इतना ही वक्तव्य है कि यदि वेदमें इस प्रकारकी शक्ति हो तो वेद अवश्य ही मान्य है। किन्तु वह शक्ति है या नहीं; यह एक स्वतंत्र विचार आवश्यक हो पड़ता है। अनेक लोग कहेंगे कि हम वेदमें कोई ऐसी शक्ति नहीं देखते। वेदका अगौरव–अमानता हिन्दू शास्त्रोंमें भी मौजूद है। मुण्डकोपनिषत्के आरंभमें 'अपरा' और 'परा' इस तरह दो विद्यायें बतलाई गई हैं। इनमें वेदादिको अपरा और अक्षयप्राप्ति करानेवाली ब्रह्मविद्याको परा कहा है, अर्थात् वेदविद्यासे इस पराविद्याको श्रेष्ठतर बतलाया है। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ४२–४४ में वेदपरायणोंकी निन्दा की गई है। भागवतपुराण (४।२९,४२)में नारद कहते हैं कि परमेश्वर जिस पर अनुग्रह करते हैं वह वेद त्याग कर देता है। कठोपनिषत्में कहा है—"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया बहुना श्रुतेन।" अर्थात् वेदके द्वारा आत्मा लभ्य नहीं हो सकता।

शास्त्रानुसन्धान करनेसे इस प्रकारके और भी वचन मिल सकते हैं। पाठक देखेंगे कि 'वेदको क्यों मानें?' इस प्रश्नका हमने कोई उत्तर नहीं दिया। देनेकी हमारी इच्छा भी नहीं है। जो समर्थ हैं वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसकी मीमांसा करेंगे। हमने पूर्वगामी पण्डितोंके प्रदर्शित किये हुए पथ पर परिभ्रमण करके जो देखा है, वही पाठकोंके सामने निवेदित कर दिया।

नोट—यह स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जीके बंगला लेखका सारांश है—सब विचार उन्हींके हैं। जैनोंके लिए उपयोगी समझकर प्रकाशित किया जाता है।

विविध-प्रसंग।

१ संस्कृतभाषा कभी बोलचालकी भाषा थी या नहीं?

मराठीके सुप्रसिद्ध पत्र 'विविधज्ञानविस्तार' के अगस्तके अंकमें एक महत्त्वका लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें इस विषय पर बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण चर्चा की गई है कि संस्कृत भाषा किसी समय बोलचालकी भाषा थी या नहीं। इस विषयमें एतद्देशीय और पाश्चात्य विद्वानोंमें परस्पर बहुत मतभेद है। एक पक्ष कहता है कि संस्कृत भाषा बोलचालकी भाषा कभी नहीं रहा। वह ब्राह्मण आदि विशिष्ट लोगोंकी-जो शिक्षित थे-उस समयकी प्रचलित भाषासे भिन्न भाषा थी। उनके सिवाय दूसरे लोग उसे नहीं जानते थे। वे स्वयं भी उसे पढ़कर जानते थे। दूसरा पक्ष कहता है कि नहीं, संस्कृत एक समय जीवित भाषा थी। वह एक बड़े भारी प्रदेशकी बोलचालकी भाषा रह चुकी है। पाणिनि आचार्यके समयमें वह बोली जाती थी। उस समय उसका नाम 'संस्कृत' नहीं था। पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें उसका सिर्फ़ 'भाषा' के नामसे उल्लेख किया है। 'भाषा' इस नामसे मालूम होता है कि वह सर्व साधारणकी बोलचालकी भाषा थी। लेखकने अपने इस पिछले मतकी पुष्टिमें बहुत ही संतोषयोग्य युक्तियाँ दी हैं और अपने विरुद्ध पक्षका बड़ी ही योग्यतासे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खण्डन किया है। लेखकका अनुमान है कि ईस्वीसन्के ५००-६०० वर्षपूर्वसे शुद्ध संस्कृत भाषाका ह्रास होना शुरू हुआ और होते होते ईस्वीसन्के प्रारंभमें प्राकृत भाषाका उदय हुआ। इसके पहले संस्कृतका जोरोशोर था। पाणिनिका समय ईस्वी सन्से १०००-८०० वर्ष पहले माना जाना है। इत्यादि। यह लेख संस्कृतज्ञ विद्वानोंके पढ़ने योग्य है।

आर्यसमाजकृत मेघजातिकी शुद्धि और जैनसमाज।

आर्यसमाजके सिद्धान्त चाहे जैसे हों और उसके सुधारके ढंग चाहे जैसे हों, परंतु इसमें सन्देह नहीं कि उसमें उद्योगी साहसी और कर्मवीर पुरुषोंकी संख्या अच्छी है। उसमें केवल बातौनी जमाखर्च करनेवाले ही नहीं हैं- काम करनेवाले भी हैं। स्यालकोट, गुरुदासपुर, जम्बू और काश्मीरके कितने ही शहरोंमें मेघ नामकी एक जाति है। इसकी जनसंख्या गत मनुष्यगणनाके अनुसार लगभग १ लाख १५ हजार है। ये लोग साधारणतः गौर वर्णके हैं। उनके आचार-विचार रहन-सहन के भीतर श्रेष्ठ हिंदूपनके लक्षण मिलते हैं। किसी समय वे समाजके ऊँचे दर्जे पर प्रतिष्ठित रह चुके है। इस समय भी उनमें कोई गंदा धंधा करनेवाले नही हैं। बढ़ई, दर्जी आदिके काम करके वे अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। कोई कोई लोग नौकरी भी करते हैं। इन लोगोंके प्रति हिन्दुओंका व्यवहार बहुत ही बुरा है। ये लोग हिन्दुओंके ग्रामोंमें या मुहल्लोंमें निवास नहीं कर सकते, कुएको स्पर्श नहीं कर सकते, पानी पीनेके लिए दूसरोंकी कृपाकी इन्हें सदा अपेक्षा रहती है। राजमार्गों परसे वे स्वाधीनतापूर्वक नहीं चल सकते। कोई 'पवित्र' हिन्दू उनके स्पर्शसे अपवित्र न हो जाय, इसकारण उन्हें पुकार कर सावधान करते हुए चलना पड़ता है। हिन्दुओंके देवता उन्हें अपने द्वारके पास तक भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं फटकने देते हैं ! इस जतिकी दुर्दशा पर आर्यसमाजके नेताओंको दया आई है। उन्होंने हर प्रकारके संकट सहन करके इस जातिको ऊपर उठाकर मनुष्योचित स्थान पर बैठानेका उद्योग प्रारंभ कर दिया है। इस उद्योगमें उन्हें बड़े बड़े विघ्नोंका सामना करना पड़ता है। एक हिन्दूने तो इस कामसे चिढ़कर एक समाजीको हथियारसे घायल तक कर डाला है। हमारी समझमें मनुष्य अपने चरित्रसे और व्यवहारसे ही शुद्ध हो सकता है; किसी प्रकारके दिखावटी अनुष्ठानसे नहीं। इसलिए हम समाजकी शुद्धि-प्रथाको अच्छा नहीं समझते हैं। परन्तु किसी-तरह हो समाजी भाइयोंने मेघोंको उन्नत करनेका मार्ग खोल दिया है। उस दिन उन्होंने २०० मेघोंको शुद्धिसंस्कारके द्वारा शुद्ध कर डाला और उनके साथ बहुतसे उच्चकुलके समाजियोंने एक साथ भोजन किया ! वे इतना ही करके चुप नहीं हो गये हैं। मेघोंको शिक्षित बनानेके लिए उन्होंने जगह जगह पाठशालायें खोली हैं, और शिल्प शिक्षा देनेके लिए कई शिल्पशालायें स्थापित कर दी हैं। मेघोंके कई लड़के गुरुकुल ब्रह्मचर्याश्रममें भरती हो गये हैं और उन्हें उच्चश्रेणीकी शिक्षा मिल रही है। इस नोटको लिखते समय हमें दक्षिणके सादुर लोगोंकी याद आगई, जिनके विषयमें हमने पिछले वर्षके तीसरे अंकमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित करके जैनसमाजके नेताओंसे प्रार्थना की थी कि वे सादुर लोगोंके लिए धर्मका द्वार खोल दें। परन्तु उस ओर किसीका भी ध्यान न गया। २० हजार सादुर लोग जैनी बननेके लिए तरस रहे हैं। वे उच्च कुलके हैं, उनके व्यापारादि कार्य उच्च कुलके योग्य हैं, दक्षिणके दूसरे जैनियोंमें विधवाविवाह जायज है; परन्तु उनमें यह भी नहीं होता है, और इस काममें कोई विघ्न डालनेवाला भी नहीं है। इतने पर भी ज़रा ज़रासी बातोंके लिए बड़े

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बड़े आन्दोलन करनेवाले जैनसमाजमें दो चार कर्मवीर भी ऐसे नहीं निकलते, जो इन २० हजार भाईयोंको जैनधर्मकी पवित्र छायाके नीचे लाकर खड़े कर देवें। आर्यसमाज और जैनसमाजकी वर्तमान अवस्थाका अन्तर इन्हीं दो उदाहरणोंसे मालूम किया जा सकता है।

'ग्रन्थपरीक्षा' के विषयमें कुछ निवेदन।

पिछले कई अंकोंसे बाबू जुगलकिशोरजीकी लिखी हुई 'ग्रन्थ-परीक्षा' नामक लेखमाला निकल रही है। अबतक इसमें कुन्दकुन्द-श्रावकाचार, उमास्वामिश्रावकाचार और जिनसेनत्रिवर्णाचार नामक तीन ग्रन्थोंकी विस्तृत समालोचना हो चुकी है। हमको आशा है कि हमारे शिक्षित पाठकोंने इन लेखोंको ध्यान पूर्वक बाँचा होगा। जिन महाशयोंने किसी कारणसे न बाँच पाया हो, हम सिफारिश करते हैं कि वे थोड़ासा समय निकालकर इन्हें अवश्य बाँच डालें। जैन-साहित्यमें शायद यह लेखमाला सबसे पहली समझी जायगी जिसमें धर्मकी दुर्लभ्य मुद्रासे अङ्कित ग्रन्थोंकी इस तरह स्वाधीनतापूर्वक जाँच की गई हो। जिस समाजमें धर्मशास्त्र मात्रकी सीमाके बाहर एक शब्दका उच्चारण करना भी बड़ेसे बड़ा अपराध गिना जाता है, उस समाजके साहित्यमें इस प्रकारके लेखोंका प्रकट होना साधारण बात नहीं। यह लेखमाला उस समयकी और उस साहित्यकी पूर्व सूचनिका है, जिसमें नामीसे नामी ग्रन्थोंकी और नामीसे नामी विद्वानोंकी रचनाकी जाँच विवेक बुद्धिकी उस कठिन कसौटी परसे की जायगी, जो कसौटी सदासे यह दुहाई देती आई है कि—

"पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषःकपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् " न मेरे हृदयमें महावीर भगवानके प्रति कुछ पक्षपात है और न कपिलादिके प्रति द्वेषभाव । मेरा तो यह ख़याल है कि जिसका वचन युक्तियुक्त हो, उसीको मान लेना चाहिए । " इस समय जैनसमाज इस कसौटीको खो बैठा है और इस कारण उसकी दृष्टिमें पीतल और सोना, सीप और चाँदी, काच और हीरा, सब एक ही श्रेणीकी चीजें हैं । बड़े बड़े सिद्धान्तग्रन्थोंके आगे वह जितनी नम्रतासे मस्तक झुकाता है, उतनी ही नम्रतासे त्रिवर्णाचार जैसे जाली ग्रन्थोंके सामने झुकनेमें भी उसे कुछ संकोच नहीं होता। झूठी धर्मश्रद्धाके असह्य दबावने उसकी विवेकबुद्धिको इस तरह दबा दिया है कि उसके 'आगे सब धान बाईस पंसेरी' हो गया है । उसमें इतनी भी शक्ति नहीं रही है कि एक ही विषयके किन्हीं दो ग्रन्थोंके बीच कितना तारतम्य है—कौन श्रेष्ठ है और कौन नहीं, इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें कह सके । यही कारण है जो आज शील-कथा और पार्श्वपुराण, आराधनासार और पद्मपुराण, धर्मसंग्रह और रत्नकरण्ड, स्वतन्त्र ग्रन्थ और संग्रहीत या अनुवाद ग्रन्थ सब समान आदरके पात्र बन रहे हैं । इसीके फलसे आज भट्टारकोंका पिछला दुर्बल साहित्य प्राचीन पुष्ट साहित्यको न जाने कहाँ दबाकर साहित्य-सिंहासनको पुनीत कर रहा है । हमको विश्वास है कि यह लेख-माला जैनसमाजकी गई हुई परीक्षाप्रधानताको फिरसे प्रधानता दिलानेका सूत्रपात करेगी और शिक्षित समुदायमें प्रत्येक ग्रन्थको सावधानीसे पढ़नेके भाव उत्पन्न करेगी । बाबू जुगलकिशोरजीके लेख यह बतला रहे हैं कि वास्तविक स्वाध्याय किसको कहते हैं और यह कितने परिश्रमसे होता है । एक ग्रन्थकी जाँचके लिए दूसरे कितने ग्रन्थोंकी जाँच पड़ताल करनी होती है । अपने ग्रन्थोंको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समझनेके लिए केवल अपने ही घरको टटोलनेसे काम नहीं चल सकता—दूसरोंके ग्रन्थ भी देखने पड़ते हैं। इन लेखोंने हमें यह भी शिक्षा दी है कि सावधान! किसी ग्रन्थ पर किसी ख्यातनामा आचार्यका नाम देखकर ही उसे आप्तवाक्य न समझ बैठना। कुछ महात्माओंकी कृपासे धर्मकी हाटमें चाँदीके साथ साथ रांगेके भी सिक्के चल रहे हैं। जरूरत हैं कि ऐसे सिक्के खोज खोजकर जुदा कर दिये जावें और सर्वसाधारण जन सचेत कर दिये जावें। आशा है कि इस लेखको पढ़कर दूसरे विद्वान् जन भी ग्रन्थोंकी परीक्षा, आलोचना और समालोचनाकी ओर प्रवृत्त होंगे और इस तरह जैनसाहित्यकी उन्नतिके एक मार्गको प्रशस्त बनानेके यशके भागी होंगे।

४ जैनगजट और महासभा।

जैनगजट (हिन्दी) के लेखोंसे उद्विग्न और उत्तेजित होकर हमारे कई हितैषी मित्र और पाठक हमसे प्रश्न करते हैं कि "आपने इन दिनों मौन धारण क्यों कर रक्खा है? आप उसके आक्षेपोंका उत्तर क्यों नहीं देते हैं? उसके लेखोंसे बहुत हानि हो रही है।" ऐसे सज्जनोंसे हमारा नम्र निवेदन यह है कि इस समय वह जिस ढंगके लेख लिख रहा है, जैसी सभ्यता, शालीनता और गंभीरता अपने प्रत्येक लेखमें प्रकट कर रहा है, उसकी आलोचना करना या उसके विषयमें तदनुरूप उत्तर देना हम अपनी शक्तिसे बाहर समझते हैं और शायद अच्छेसे अच्छे लेखकको भी उसकी बे-लगाम कलमके आगे हार माननी पड़ेगी। इसके लिए उसके 'धर्ममर्मज्ञ' 'अनुभवी' सम्पादकों और लेखकों जैसी योग्यतावाले सज्जन ही समर्थ हो सकते हैं। दूसरे उसकी निरन्तरकी वाग्बाणवर्षाको सहन करते करते हमारी सहनशीलता इतनी बढ गई है कि अब हम उसकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घृणितसे घृणित मर्मपीडक गालियोंसे भी व्यथित या विचालित नहीं होते हैं, अतः उसका प्रतिवाद करनेकी आवश्यकता नहीं देखते। तीसरे हमारा यह भी विश्वास हो गया है कि उसके लेखोंका शिक्षित समुदाय पर कुछ भी असर नहीं पड़ता है। लोग अब इतने भोले और नासमझ नहीं रहे हैं जितना कि वह समझता है। इन सब कारणोंसे उसके विषयमें कुछ लिखनेकी प्रवृत्ति नहीं होती है। अवश्य ही इस बातका दुःख हमें बहुत होता है कि वह भारतवर्षीय जैन-महासभाका मुखपत्र है और महासभा सारे भारतके जैनियोंकी संयुक्त सभा समझी जाती है। जैनमहासभाके मुखपत्रको पढ़कर जैनेतर लोगोंको जैनसमाजकी वर्तमान अवस्थाके विषयमें बहुत बड़ा भ्रम हो सकता है। यदि कोई सज्जन जैनसमाजकी हालत जाननेके लिए लगातार दो चार महीने जैनगजटका पाठ करें, तो उनके हृदयमें जैन-समाजका बहुत ही शोचनीय चित्र अंकित हो जायगा। वे निश्चय कर लेंगे कि जैनसमाजमें यदि कुछ प्रगति हो रही है तो गालीगलोजकी, खण्डनमण्डनकी, बाधा और रुकावटोंकी; यदि कुछ काम हो रहा है तो छापेके निषेधका, ग्रन्थप्रचारके विरोधका, तेरह-बीसकी दबी हुई आग सुलगानेका, प्रत्येक समयोपयोगी सुधारोंमें दोष लगानेका, और पुरानी निर्जीव रूढियोंकी प्रशंसाके गीत गानेका। वे समझेंगे कि जैनसमाजके भाग्यकी बागडोर कुछ खुशामदपसन्द धनिकों और खुशामदखोर अर्द्धदग्ध पण्डित कहलानेवालोंके हाथ-में है। ये ही लोग इस समाजके लेखक, व्याख्याता, प्रचारक और 'सर्वे सर्वा' हैं। इस समाजमें संकीर्णता, धर्मान्धता और स्वार्थपरा-यणताका साम्राज्य है। इत्यादि इत्यादि। यदि दूसरे लोग इस प्रकारका अनुमान कर लें तो इसमें उनका कोई दोष भी नहीं। एक समाजकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'रजिस्ट्रीशुदा' महासभाके मुखपत्रके लेखोंसे उस समाजकी अवस्थाका अनुमान करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। यह दोष उनका है जो दूसरोंको इस प्रकारके अनुमान करनेका मौका दे रहे हैं और हम तो कहेंगे कि जैनगजटके द्वारा हमारे समाजका जो रूप प्रगट हो रहा है, वह भले ही उसका वास्तविक रूप न हो-एक अंश विशेषका ही वह नमूना हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उस रूपके आगे उसका प्रतिपक्षी रूप (वह कितना ही अच्छा क्यों न हो) बहुत ही कमजोर है। अवश्य ही वह काम कर रहा है, पर उसमें इतना उत्साह, ऐक्यबल और अध्यवसाय नहीं है कि लोगोंको जैनसमाजके उस रूपकी कल्पना न होने दे जो जैनमहासभा और उसके मुखपत्रसे हो रही है। हम यह नहीं चाहते कि जैनगजटके वर्तमान लेखोंके समान लेख प्रकाशित ही न हों, अथवा जैनगजटका निकलना ही बन्द हो जाय, नहीं, हम अभी जैनसमाजमें ऐसे पत्रों और लेखोंकी एक अपेक्षासे बहुत आवश्यकता समझ रहे हैं; परन्तु महासभाके मुखपत्रमें इस प्रकारके लेखोंका प्रकाशित होना सारे जैनसमाजके लिए कलङ्ककी बात समझते हैं और इसी लिए हमें दुःख होता है। इस समय उसके लेख महासभाके उद्देश्योंसे बिलकुल विरुद्ध एकपक्षीय और पारस्परिक द्वेषोंकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, हम उनके विरुद्धमें लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं देखते हैं; परन्तु महासभाके मेम्बरोंका और दूसरे सज्जन हितैषियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किये बिना हमसे नहीं रहा जाता। क्या महासभाका और उसके दो चार कार्यकर्त्ताओंका यह 'एकहत्थी' 'एकपक्षीय' शासनका चाबुक समूचे जैन समाजकी पीठ पर निरन्तर ही पड़ता रहेगा? क्या इससे बचनेका कोई उपाय नहीं है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५ महावीर भगवानका जीवनचरित और महावीर अंक।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका अबतक कोई ऐसा जीवन-चरित प्रकाशित नहीं हुआ है कि जिससे वर्तमानका शिक्षित समुदाय इस बातकी कल्पना कर सके कि संसारके प्रसिद्ध प्रसिद्ध धर्म-प्रवर्तकोंमें उनका आसन कितना ऊँचा था, उनकी अखण्ड अव्याबाध और उदात्त फिलासोफी कितनी बहुमूल्य और विज्ञानसम्मत थी, उनका चरित्र कितना ऊँचा था, उनके उपदेशोंने अपने समयके जनसमाजपर क्या प्रभाव डाला था, उनके धर्मने देशको क्या लाभ पहुँचाया था और उनके शासनकी प्रगति तथा अवनति किन किन कारणोंसे हुई। महावीर भगवानके समकालीन बुद्धदेवके विषयमें इस समय संसारका शिक्षित समाज जितना अधिक ज्ञान रखता है उतना महावीर भगवानके विषयमें नहीं रखता। इसका कारण यह है कि संसारकी प्रायः प्रत्येक भाषामें बुद्धदेवके सैकड़ों जीवनचरित मौजूद हैं; परन्तु भगवान् महावीरका और तो क्या जैनियोंके घरमें ही कोई ऐसा चरित नहीं है जो इस समयके लोगोंकी जिज्ञासाको पूर्ण कर सके। संसारके एक सर्वोच्च धर्मप्रवर्तक और फिलासफरके विषयमें लोगोंको अज्ञानी रखना हम लोगोंके लिए बड़ी लज्जाकी बात है। हर्षका विषय है कि अब इस ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ है और 'जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस हेरल्ड' के सम्पादक श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द देसाई बी. ए. एलएल. बी.ने इस विषयमें एक बहुत ही प्रशंसनीय उद्योग किया है उन्होंने उक्त पत्रका एक खास अंक प्रकाशित किया है और उसका नाम 'महावीर अंक' रक्खा है। यह अंक रायल आठपेजी साइजके लगभग १०० पृष्ठोंका है। इसमें ९ लेख अँगरेज़ीके और शेष सब लेख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुजराती भाषाके हैं। जितनें लेख हैं वे सब ही महावीर भगवानके सम्बन्धमें हैं। दो तीन लेख बहुत ही महत्त्वके हैं। हमें यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि सम्पादक महाशयको जैन समाजके लेखकोंसे इस विषयमें बहुत ही कम सहायता मिली है—हम स्वयं भी अनवकाश-वश इस अंकके लिए कोई लेख नहीं लिख सके। परन्तु फिर भी उन्हें अपने इस पहले प्रयत्नमें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। इस तरहके प्रयत्न और भी दो चार बार दो चार विद्वानों द्वारा किये जावेंगे, तो हमें आशा है कि थोड़े ही समयमें 'महावीरचरित' लिखनेके लिए यथेष्ट सामग्री एकट्ठी हो जायगी। हेरल्डके सम्पादक महोदय महावीर भगवानके विषयमें जिन जिन बातों पर लेख चाहते थे, उनकी उन्होंने एक सूची बनाकर लेखकोंके पास भेजी थी। सूची बहुत विचारसे लिखी गई है, इस लिए हम उसे यहाँ प्रकाशित कर देते हैं। दिगम्बर समाजके विद्वान् और लेखक भी इससे जान सकेंगे कि भगवानके जीवनचरितके लिए क्या क्या सामग्री चाहिए:—

१ महावीर प्रभुका बाल्यकाल—विद्यार्थी अवस्था। २ गृहस्थाश्रम और त्याग। ३ अभ्यासी और कर्मवीर महावीर। ४ धर्मोपदेशक और धर्मोद्धारक महावीर। ५ भगवानके गणधर, शिष्य शिष्यायें और श्रावक। ६ भगवानके समकालीन राजाओंका दिग्दर्शन। ७ भगवानके समयकी संघकी स्थिति और बस्ती। ८ साधुओंकी दशा। ९ महावीरचरितसे मिलनेवाली शिक्षायें। १० उनके समयके ३६३ पाखण्डियोंका परिचय। ११ कालनिर्णय और उसकी कठिनाईयाँ। १२ महावीर और बुद्धदेव। १३ भगवद्भाषित सूत्र। १४ वीरचरितकी आश्चर्यजनक घटनायें और उनकी सायन्सकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिसे जाँच। १५ वीरप्रभुका विहार, विहारभूमियों और कल्याणक भूमियोंका वर्तमान स्थान कहाँ हैं। १६ वीर भगवानके समयकी समग्र भारतकी स्थिति। १७ उस समयके साधुओंका वर्तमान साधुओंसे मिलान। १८ वीरशासनकी पूर्वावस्था और वर्तमान अवस्थाका अन्तर, कैसे सुधारोंकी आवश्यकता है और वे अमलमें कैसे लाये जा सकते हैं? १९ वीरशासनके गणगच्छों और संघोंका ऐतिहासिक परिचय। २० वीर प्रभुका निर्वाण। २१ वीरचरितके उपलब्ध साधन—पुस्तक, शिलालेख आदि। २२ वीरचरित किस उत्तम प्रणालीसे लिखा जाना चाहिए। २३ श्वेताम्बर और दिगम्बर दृष्टिसे वीरचरितमें क्या क्या फर्क पड़ेगा? २४ वीर प्रभुके समयमें वर्णभेद जातिभेद था या नहीं? २५ इस समय जैनधर्मके अनुयायी प्रधानतः वैश्य ही क्यों हैं? २६ वीर प्रभुने पाँचवाँ ब्रह्मचर्यव्रत नया खड़ा किया, क्या यह सच है? २७ वर्तमानमें जैनोंकी संख्या तेरह लाख क्यों रह गई? २८ वीर प्रभुके २७ भवोंका उत्क्रान्तिवाद या विकासवाद। २९ वीर प्रभुकी जुदा जुदा अवस्थायें। ३० प्राचीन शिलालेख और उन परसे उनके जीवन पर क्या प्रकाश पड़ता है? ३१ महावीर भगवानकी जन्मकुण्डलीके ग्रहोंपरसे ज्योतिष शास्त्रानुसार उनके जन्मका निर्णय। ३२ जैनेतर पुरुषोंकी दृष्टिमें महावीर।

६ जैनहितेच्छुका खास अंक और जैनसाहित्यका प्रचार।

हितैषीके पाठकोंको 'जैनहितेच्छु'का परिचय कई बार कराया जा चुका है। इस मासिक पत्रको हम जैनसमाजका सर्वोत्कृष्ट पत्र समझते हैं। अबकी बार इसका पर्युषण पर्वके उपलक्षमें खास अंक प्रकाशित किया गया है। इसका विशाल आकार, एकसे एक बढ़कर लेखोंका संग्रह, सम्पादनका महत्परिश्रम और इन सब बातोंकी जोड़में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतिशय तुच्छ मूल्य देखकर हम दंग रह गये। इसमें रायल बारहपेजी साइजके ३०० पृष्ठ हैं, मजबूत कागज हैं, छपाई अच्छी है, तिस पर भी मूल्य सिर्फ एक आना है ! 'हितेच्छु' के ग्राहक लगभग एक हज़ार हैं; परन्तु इस अंककी चार हज़ार प्रतियाँ छापी गई हैं। सम्पादक महाशयने इस कार्यमें अपनी गिरहके लगभग दो सौ रुपये लगा दिये हैं, अर्थात् इतना घाटा सहकर उन्होंने यह उच्चश्रेणीके साहित्यके प्रचारका कार्य किया है। लेखोंकी दृष्टिसे तो यह अंक बहुत ही महत्त्वका है। प्रत्येक लेख ऊँचे उदारताके गहरे विचारोंसे भरा हुआ है और लेखकोंको अपने विचार प्रकट करनेके लिए पूरी पूरी स्वाधीनता दी गई है। सब मिलकर १८ लेख हैं जिनमेंसे ३ अँगरेजीके हैं। जो भाई गुजराती समझ सकते हैं अथवा अँगरेजी जानते हैं उन्हें यह अंक अवश्य मँगा लेना चाहिए। हितैषीमें हम इस अंकके कई लेखोंका अनुवाद प्रकाशित करना चाहते हैं। 'आदर्श आर्या' और 'जीवनका विचित्र परिवर्तन' ये दो गल्पें हितेच्छुसे ही ली गई हैं। इस अंकको देखकर—क्या कभी हमारे हिन्दीहितैषी भाईयोंको भी इस प्रकारके सुलभ साहित्यके प्रचार करनेकी सुबुद्धि उत्पन्न होगी ?

८ सूर्यकिरणोंसे यक्ष्मारोगकी चिकित्सा।

फ्रान्सदेशमें सूर्य-किरणोंकी सहायतासे राजयक्ष्मा या क्षयरोग (तपेदिक) की चिकित्सा होने लगी है और इससे आश्चर्यजनक लाभ हुआ है। डाक्टर रोलिये नामक एक फरासीस साहबने इस चिकित्साप्रणालीके अनुसार १२०० यक्ष्मारोगियोंकी चिकित्साकी थी जिनमेंसे लगभग १००० रोगी चंगे हो गये हैं। इस प्रणालीके अनुसार रोगीको गर्मीमें कपासके वस्त्र और शीतकालमें ऊनी फलालेन पहनाके रखते हैं। सिर पर सफेद टोपी और आँखों पर धूपसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बचनेके लिए पीलेरंगका चश्मा लगाना पड़ता है। शरीरके जुदाजुदा स्थानोंमें यक्ष्माके बीजाणुओंका आक्रमण होता है, परन्तु इलाज सबका एक ही प्रकारका है। पहले दिन पैरोंके तलुओंको धूपमें फैलाके रखना चाहिए, दूसरे दिन दोनों पैर खुले करके रखना चाहिए, तीसरे दिन जानु, चौथे दिन तलपेट (पेडू या तरेट), पाँचवें दिन छाती और छट्टे सातवें दिन गर्दन तथा मस्तक पर धूप लगाना चाहिए। इस तरहके प्रयोगोंसे सूर्यकिरणोंकी रासायनिक शक्ति यक्ष्माके बीजोंको नष्ट कर देती है। पार्वतीय प्रदेशोंमें सूर्यकी किरणोंकी यह शक्ति बहुत अधिक रहती है—समुद्रतीरके स्थानोंमें उतनी नहीं होती। कानि नामक द्वीपमें एक बड़ा भारी अस्पताल है। उसमें इस सौर-चिकित्सासे इतना लाभ हुआ है कि न्यूयार्क शहरके लोग-अब एक और हास्पिटल बनानेकी तैयारी कर रहे हैं। हमारे देशके लड़के बच्चे नंगे फिरा करते हैं और खुली हवा तथा सूर्यकिरणोंसे अपने शरीरको स्नान कराते रहते हैं। इससे उनके स्वास्थ्यको बहुत लाभ पहुँचता है। इस बातकी हमने स्वयं परीक्षा की है कि प्रतिदिन कुछ समय तक सूर्यकी किरणें शरीर पर पड़ने देनेसे स्वास्थ्यको बहुत लाभ पहुँचता है। रोमकूपोंको स्वच्छ रखनेके लिए सूर्यकिरणें बहुत ही उपयोगी हैं।

भूलसंशोधन—गताङ्कके ५१४ वें पृष्ठके शिलालेखके अन्तमें 'बोद्धे : थूपे" और उसके अनुवादमें 'बौद्ध स्तूप' छप गया है। पाठक, इसके स्थानमें 'बोद्ध स्तूप' पढ़ें। और उससे पहलेके आठवें अंकमें जो 'डेढ़ लाख वर्षका पुराना मनुष्य' शीर्षक नोट निकला है वह बाबू ब्रजमोहनलालजी वर्मा' का लिखा हुआ है। उसके नीचे श्रीयुक्त 'ज गन्मोहन वर्मा' का नाम छप गया है। पाठकगण उसे भी सुधार लें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पवित्र असली आजमूदा

२० वर्षका

सैकडों प्रशंसा पत्र प्राप्त

हाजमेकी

प्रसिद्ध अक्सीर दवा

नमकसुलेमानी

फायदा न करे तो दाम वापस.

मिलने का पता

कि ॥) सी एक दर्जन पो॰स डा॰अलग.

चन्द्रसेन जैन वैद्य

इटावा.

ॐ पहचानो मार्कदस सहि नहिं तो धोकासे

दद्रुदमन—दादकी अक्सीर दवा। फी डिब्बी ।) आना

दन्तकुसुमाकर—दांतोंकी रामबाण दवा। फी डिब्बी ।) आ

नोट—हमारे यहां सब रोगोंकी तत्काल गुण दिखानेवाली तैयार रहती हैं। विशेष हाल जाननेको बड़ी सूची मंगा देखो।

[इस अंकके प्रकाशित होनेकी तारीख ८-१-१८]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org